

श्रमण ŚRAMAṆA

अक्टूबर-दिसम्बर २००४



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRŚWANĀTHA VIDYĀPĪṬHA, VARANASI

श्रमण

ŚRAMAṆA

अक्टूबर-दिसम्बर २००४



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

PĀRŚWANĀTHA VIDYĀPĪṬHA, VARANASI

श्रमण

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका

वर्ष ५५

अंक १०-१२ अक्टूबर-दिसम्बर २००४

प्रधान सम्पादक
प्रोफेसर सागरमल जैन

सम्पादक
डॉ० शिवप्रसाद

प्रकाशक
पार्श्वनाथ विद्यापीठ,
आई.टी.आई. मार्ग, करौदी
पो.ऑ. - बी.एच.यू.,
वाराणसी-२२१००५ (उ.प्र.)
e-mail : parshwanathvidyapeeth@rediffmail.com
दूरभाष : ०५४२-२५७५५२१

ISSN-0972-1002

वार्षिक सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	:	रु. १५०.००
व्यक्तियों के लिए	:	रु. १००.००
इस अंक का मूल्य	:	रु. २५.००

आजीवन सदस्यता शुल्क

संस्थाओं के लिए	:	रु. १०००.००
व्यक्तियों के लिए	:	रु. ५००.००

नोट : सदस्यता शुल्क का चेक या ड्राफ्ट केवल पार्श्वनाथ विद्यापीठ के नाम से ही भेजे।

सम्पादकीय

श्रमण अक्टूबर-दिसम्बर २००४ का अंक सम्माननीय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। अत्यन्त विलम्ब से इस अंक को प्रस्तुत करने के कारण हम अपने सुधी पाठकों से क्षमायाचना करने का भी साहस नहीं कर पा रहे हैं। पूर्व की भांति इस अंक में भी जैन साहित्य, आचार, इतिहास एवं कला पक्ष से सम्बद्ध शोध आलेखों को स्थान दिया गया है। इस अंक में हम **सुरसुदरीचरिअं** के द्वितीय परिच्छेद की शेष गाथाओं की संस्कृत छाया, गुजराती अर्थ और हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं। पूज्य मुनिश्री विश्रुतयशविजय जी द्वारा प्रस्तुत की गयी यह महत्वपूर्ण कृति हमें पूज्य आचार्यश्री विजय राजयशसूरि जी म०सा० के उदार सौजन्य से प्राप्त हुई है, जिसके लिये हम उनके हृदय से आभारी हैं।

अपने सम्माननीय पाठकों एवं लेखकों से **श्रमण** के सम्पादक के रूप में यह मेरी अंतिम मुलाकात है। **श्रमण** का आगामी अंक नये सम्पादकत्व में पाठकों के समक्ष होगा।

दिनांक : २ जून, २००५

शिव प्रसाद

श्रमण

अक्टूबर-दिसम्बर २००४

सम्पादकीय विषयसूची

हिन्दी खण्ड

१. निर्ग्रन्थ-संघ और श्रमण परम्परा - साध्वी विजयश्री 'आर्या' १-४
२. चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक की विषयवस्तु का मूल्यांकन - डॉ० हुकमचंद जैन ५-८
३. अर्द्धमागधी जैन आगम साहित्य में माला निर्माण-कला - डॉ० हरिशंकर पाण्डेय ९-१२
४. आगमिक मान्यताओं में युगानुकूलन - डॉ० नंदलाल जैन १३-२३
५. प्राचीनतम एक दुर्लभ जैन पाण्डुलिपि - प्राचार्य कुन्दन लाल जैन २४-२६
६. जैन कथा साहित्य का गौरव - 'वसुदेवहिण्डी' - डॉ० वेद प्रकाश गर्ग २७-२९
७. बिहार गाँव की मृण्मुहरें - डॉ० अशोक प्रियदर्शी ३०-३४
८. कल्पप्रदीप में उल्लिखित वाराणसी के जैन एवं कतिपय अन्य तीर्थस्थल - शिव प्रसाद ३५-३९
९. जैन एवं बौद्ध श्रमण-संघ में विधि शास्त्र का विकास : एक परिचय - डॉ० चन्द्ररेखा सिंह ४०-४७
१०. फतेहपुर सीकरी से प्राप्त श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) की प्रतिमा - डॉ० अशोक प्रियदर्शी ४८-५१

ENGLISH SECTION

11. Status of Women in Jain Community - Dr. Recta Agrawal 52-56
12. Concept of Sūksma Śarira in Indian Philosophy - Dr. Saroj Sharma 57-59
13. Economic Aspect of Non-Violence - Dr. B.N. Sinha 60-88
१४. विद्यापीठ के प्रांगण में ८९
१५. जैन जगत ९०-९२
१६. साहित्य सत्कार ९३-९९
- सुरसुंदरीचरित्रं १-५५



निर्ग्रन्थ-संघ और श्रमण परम्परा

साध्वी विजयश्री 'आर्या' *

जैन-श्रमणों का आगामिक एवं प्राचीनतम नाम 'निर्ग्रन्थ' है। आचार्य हरिभद्र ने 'निर्ग्रन्थ' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है - निर्गतो ग्रन्थाद् निर्ग्रन्थः। ग्रन्थ का अर्थ गाँठ रूप परिग्रह है। धन-धान्यादि बाह्य परिग्रह एवं मिथ्यात्व, अविरति, अशुभयोगरूप आंतरिक परिग्रह से सर्वथा मुक्त श्रमण को 'निर्ग्रन्थ' कहते हैं। आचार्य उमास्वाति ने लिखा है - 'जो कर्मग्रन्थी के विजय के लिए प्रयास करता है, वह 'निर्ग्रन्थ' है। आचारांग में शीतोष्ण के त्यागी को 'निर्ग्रन्थ' कहा है। सूत्रकृतांग के अनुसार, जो राग-द्वेष से रहित होने के कारण एकाकी है, बुद्ध है, निरास्रव है, संयत है, समितियों से युक्त है, सुसमाहित है, आत्मवाद का ज्ञाता है, विद्वान् है, बाह्य और आभ्यांतर दोनों प्रकार से जिसके स्रोत छिन्न हो गये हैं, जो पूजा-सत्कार और लाभ का अर्थी नहीं है, केवल धर्मार्थी है, धर्मविद् है, मोक्ष-मार्ग की ओर चल पड़ा है, साम्यभाव का आचरण करता है, दान्त है, बंधनमुक्त होने योग्य है और निर्ममत्व है, वह 'निर्ग्रन्थ' कहलाता है। ब्राह्मण से श्रमण, श्रमण से भिक्षु एवं भिक्षु से निर्ग्रन्थ का दर्जा ऊँचा है।

निर्ग्रन्थ की पाँच श्रेणियाँ :

तत्त्वतः 'निर्ग्रन्थ' वह है जिसमें राग-द्वेष की ग्रन्थ का अभाव हो, किंतु व्यवहार में अपूर्ण होने पर भी जो तात्त्विक निर्ग्रन्थता का अभिलाषी है, भविष्य में वह स्थिति प्राप्त करना चाहता है उसे भी 'निर्ग्रन्थ' कहा जाता है। अतः चारित्र परिणाम की हानि-वृद्धि एवं साधनात्मक योग्यता के आधार पर निर्ग्रन्थ को पाँच भागों में विभाजित किया गया है - १. पुलाक, २. बकुश, ३. कुशील, ४. निर्ग्रन्थ तथा ५. स्नातक। मूल गुण तथा उत्तर गुण में परिपूर्णता प्राप्त करते हुए भी जो वीतराग-मार्ग से कभी विचलित नहीं होते, वे 'पुलाक निर्ग्रन्थ' हैं। शरीर और उपकरणों के संस्कारों का अनुसरण करने वाले सिद्धि तथा कीर्ति के अभिलाषी, सुखशील, अविविक्त परिवार वाला, शबल अतिचार दोषों से युक्त को 'बकुश निर्ग्रन्थ' कहते हैं। इन्द्रियों के वशवर्ती होने से उत्तरगुणों की विराधनामूलक प्रवृत्ति करनेवाला 'प्रतिसेवना कुशील' और कभी-कभी तीव्र कषाय के वश न होकर कदाचित् मंद कषाय के वशीभूत हो जानेवाला 'कषाय कुशील' है। सर्वज्ञता न होने पर भी जिसमें राग-द्वेष का अत्यंत अभाव हो और अन्तर्मुहूर्त

* C/o श्रीमती शीला जैन, १३/४०, शक्तिनगर, दिल्ली - ११०००७

बाद ही सर्वज्ञता प्रकट होने वाली हो, उसे 'निर्ग्रन्थ' कहते हैं तथा जिसमें सर्वज्ञता प्रकट हो गई हो, वह 'स्नातक' कहलाता है। उपर्युक्त पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ सभी तीर्थकरों के धर्म शासन में होते हैं।

बौद्ध-साहित्य में निर्ग्रन्थ : जैन-श्रमणों का पर्याय 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'निग्गंथ' या 'निगंठ' शब्द जैनों का पारिभाषिक शब्द है। भगवान् महावीर अपने समय में 'निग्गंठ नातपुत्त' के नाम से जाने जाते थे। बौद्ध पालि-ग्रन्थों में एवं अशोक के शिला-लेखों में भगवान् महावीर के लिए इस शब्द का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है। बौद्ध-ग्रन्थ **दीघनिकाय** में लिखा है कि निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र संघ के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन-विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थकर हैं, साधु-सम्मत, बहुजन पूज्य, चिर प्रव्रजित एवं वय को प्राप्त हैं। **मज्झिमनिकाय** में भी भगवान् महावीर को 'निर्ग्रन्थ' शब्द से संबोधित किया है। यहां पार्श्वनाथ परम्परा के साधुओं का उल्लेख करते हुए कहा है - 'यहाँ एक चातुर्याम संवर से संवृत सब वारि (पाप) से निवारित, सब वारितों का निवारण करने में तत्पर, सब वारि (पाप) से धुला हुआ, सब वारि (पाप) से छूटा हुआ निर्ग्रन्थ (जैन साधु) है। भगवान् महावीर के समय ही उनके श्रमणों के लिए भी 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग बौद्धों के त्रिपिटक साहित्य में विभिन्न स्थानों पर देखने को मिलता है। **दीघनिकाय** में उल्लेख है कि 'कौशल का राजा पसेनदी (प्रसेनजित) निर्ग्रन्थों को नमस्कार करता था। उसकी रानी ने निर्ग्रन्थों के उपयोग के लिए भवन बनाया।' **महावग्ग** में लिखा है कि 'एक बड़ी संख्या में निर्ग्रन्थ वैशाली में सड़क और चौराहों पर दिखाई देते थे। **उपालिसुत्त** में उल्लेख है कि 'भगवान् महावीर जब नालन्दा में विहार कर रहे थे, उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्या में निर्ग्रन्थ साधु थे। वे दीर्घ तपस्वी थे।

निर्ग्रन्थ धर्म की प्राचीनता : उक्त उल्लेखों में यह तो स्पष्ट है कि जैन और बौद्ध साहित्य में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'जैन-श्रमण' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। स्वयं गौतम बुद्ध ने महावीर को 'निग्गंठ नातपुत्त' एवं उनके अनुयायी श्रमणों को 'निग्गंठ' कहकर संबोधित किया है। महावीर ने भी अपने श्रमण एवं श्रमणियों के लिए स्थान-स्थान पर 'निग्गंथा, निग्गंथीण, निग्गंथीओं' कहकर उल्लेख किया है। अतः यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि महावीर के समय यह धर्म 'निर्ग्रन्थ धर्म' के रूप में प्रसिद्ध हो गया था। इस शब्द का अधिकाधिक प्रयोग आगम, चूर्णि, भाष्य, निर्युक्ति आदि में होने लगा था, किंतु इसकी प्राचीनता महावीर से पूर्व काल में भी देखी जाती है।

महावीर से पूर्व निर्ग्रन्थ धर्म

बौद्ध-ग्रन्थ **अंगुत्तर निकाय**, **चतुवक्कनिपात** एवं उसकी **अट्ठकथा** में गौतम बुद्ध के चाचा 'बप्प' नाम के शाक्य को निर्ग्रन्थ श्रावक बतलाया है जो महावीर

एवं बुद्ध से पहले इस धर्म के अनुयायी थे। इस बात से सिद्ध होता है कि महावीर से पूर्व निर्ग्रन्थों की कोई परम्परा अवश्य थी, जिसका अनुयायी शाक्यवंशीय, परिवार था और वह पार्श्वनाथ की ही परम्परा प्रतीत होती है। पालि-साहित्य में 'बप्प' के अतिरिक्त उपालि, अभय, अग्निवेश्यायन आदि और भी कई नाम हैं, जो पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। डॉ० हर्मन जेकोबी ने त्रिपिटक साहित्य के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि गौतम बुद्ध के पूर्व अर्थात् महावीर के जन्म से भी पहले 'निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय' विद्यमान था और उसके हजारों अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थ के रूप में विचरण करते थे। इस कथन का एक अन्य आधार और भी है कि पालि त्रिपिटक में वर्णित 'सच्चक' द्वारा महावीर को परास्त करने का आख्यान उपलब्ध होता है। सच्चक के पिता भी निर्ग्रन्थ श्रावक थे। उनका निर्ग्रन्थ श्रावक होना यह सिद्ध करता है कि महावीर के पूर्व अवश्य कोई 'निर्ग्रन्थ परम्परा' थी जिसके ये अनुयायी थे।

विचारों के नये आयाम नामक अपनी पुस्तक में सौभाग्यमल जैन ने भी यही तथ्य प्रस्तुत किया है कि, "यह निर्विवाद है कि भगवान् पार्श्वनाथ का अनुयायी सम्प्रदाय ही 'निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय' कहा जाता था। भगवान् महावीर और पार्श्वनाथ का संदेश पूर्व में 'निर्ग्रन्थ उपदेश' के नाम से प्रसिद्ध था, किन्तु भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् 'निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय' का नाम 'जैन-धर्म' हो गया।"

हिन्दू-पुराणों में जैनधर्म की आस्था को 'देव, अर्हन्त और गुरु निर्ग्रन्थ' कहकर पुष्ट किया गया है। **मुण्डकोपनिषद्** की रचना भृगु अंगिरस नाम के एक मुनि द्वारा होने का उल्लेख है, उसमें जैन-मान्यता के अनेक पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्ग्रन्थ' शब्द भी इसमें व्यवहृत हुआ है, उसका विशेषण केश-लोच (शिरोव्रतं विवधद्यैस्तु चीर्णं) दिया है। 'निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय' के नाम से जैन-धर्म ई०पू० दूसरी से पाँचवीं शताब्दी तक भी विख्यात था। बौद्ध-ग्रन्थ **मणिमेखलै** में जैन-दर्शन को दो भागों में विभक्त किया गया है - आजीवक और निर्ग्रन्थ।

आजीवक सम्प्रदाय भगवान् महावीर के विरोधी मंक्खलि गोशलक का था और निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय भगवान् महावीर स्वामी का। इसके पश्चात् जब सम्राट सिकंदर मध्य एशिया में आया, तब 'कियारिशि' नगर में उसने बहुसंख्यक निर्ग्रन्थ संतों को देखा, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। सिकंदर के पश्चात् ई० सन् की सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी निर्ग्रन्थ संघ का उल्लेख अपने यात्रा-संस्मरण में दिया है।

प्रियदर्शी सम्राट अशोक भले ही बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था, किन्तु जैन-धर्म के सिद्धांतों एवं जैन श्रमण परम्परा का प्रभूत प्रभाव उसके मानस-पटल पर था। इसीलिए उसने अपने स्तंभ-लेखों में यह आज्ञा खुदवाई कि - 'मेरे धर्म महामात्य निर्ग्रन्थों सुख-सुविधा एवं पर्याप्त सुरक्षा आदि की सुव्यवस्था करेंगे।'

प्राकृतविद्या (अक्टूबर-दिसम्बर, २००२) के मुख-पृष्ठ पर एक नग्न योगी की कायोत्सर्ग ध्यान मुद्रा में स्थित मूर्ति का चित्र दिया है, जो यूनान के एथेंस नगर में प्राप्त हुई है, वहाँ यह 'अमृतशिला' की प्रतिमा के रूप में विख्यात है। जर्मन प्राच्य वास्तुशास्त्र के अन्वेषकों ने इस प्रतिमा को ई०पू० छठी शताब्दी का कहा है। यह निर्ग्रन्थ मुद्रा का मूर्ति-शिल्प है।

इतिहास-प्रसिद्ध तथ्य है कि सिकंदर के अनुरोध पर कल्याण मुनि यूनान गये थे और एथेंस नगर में ही 'सेंट कौलानस' के नाम से आज भी उनकी समाधि विद्यमान है। किन्तु इस मूर्तिशिल्प को इनसे भी प्राचीन माना गया है। यूनान में निर्ग्रन्थ परम्परा का व्यापक प्रभाव रहा है।

इस संक्षिप्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जैनधर्म की श्रमण-परम्परा में 'निर्ग्रन्थ' शब्द जैन साधुओं के लिये प्राचीनकाल से प्रयुक्त होता आया है। एक तरह से यह जैनधर्म का पारिभाषिक, अर्थ पूर्ण शब्द है, जो अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।



चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक की विषय वस्तु का मूल्यांकन

डॉ० हुकमचंद जैन*

यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के विकास में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जहाँ धर्म है वहाँ धार्मिक ग्रन्थ हैं। जैसे वेद हिन्दुओं के लिए, अवेस्ता पारसियों के लिए, बाइबिल ईसाइयों के लिए, कुरान मुसलमानों के लिए, त्रिपिटक बौद्धों के लिए महत्वपूर्ण है। इसी तरह जैनों के लिए आगम साहित्य का महत्व है। तीर्थंकरों की वाणी ही आगमों में संकलित है।

वर्तमान में आगमों के अंग, उपांग, छेदसूत्र, मूलसूत्र, प्रकीर्णक आदि विभाग किये गये हैं। सामान्यतया प्रकीर्णक का अर्थ विविध विषयों पर संकलित ग्रन्थ ही किया गया है। अलग-अलग परम्परा अपनी संख्या अलग-अलग बताती हैं। **समवायांगसूत्र** में चौरासीह पण्णग सहस्साहं पण्णता कह कर ऋषभदेव के चौरासी हजार शिष्यों के चौरासी हजार प्रकीर्णकों का उल्लेख किया गया है।^१ महावीर के तीर्थ में चौदह हजार साधुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। अतः उनके तीर्थ में भी प्रकीर्णकों की संख्या चौदह हजार मानी गयी है। किन्तु आज प्रकीर्णकों की संख्या १० ही मानी गयी है।^२

(१) चतुःशरण (२) आतुरप्रत्याख्यान (३) संस्तारक (४) चन्द्रवेध्यक (५) गच्छाचार (६) तन्दुलवैचारिक (७) देवेन्द्रस्तव (८) गणिविद्या (९) महाप्रत्याख्यान (१०) मरणसमाधि^३।

कुछ विद्वान् २२ प्रकीर्णक मानते हैं। मत जो कुछ भी रहा हो किन्तु **चन्द्रवेध्यक** का नाम सभी में है। **चन्द्रवेध्यक** प्रकीर्णक एक पद्यात्मक रचना है। यह नाम सर्वप्रथम नंदी एवं **पाक्षिकसूत्र** में मिलता है।^४ **पाक्षिकसूत्र** वृत्ति में **चन्द्रवेध्यक** का अर्थ यंत्र पुतलिका की आंख के गोलक से है तथा विद्ध का अर्थ बिंधना या भेदन करना है।^५ यह जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करने वाला ग्रन्थ होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। **चन्द्रकवेध्यक** नाम से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ में आचार के जो नियम आदि बताये गये हैं, उनका पालन करना **चन्द्रवेध्यक** के समान कठिन है। इस ग्रन्थ के सात द्वारों से सात गुणों का वर्णन किया गया है।

विनय गुण - चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में विनय का स्वरूप समझाते हुए कहा है जो छः प्रकार के जीव निकायों के संयम का ज्ञाता और शान्त चित्त वाला हो वह निश्चित ही विनीत कहा जाता है।^६ इस प्रकार **उत्तराध्ययनसूत्र** में मुख्य रूप से श्रमणाचार तथा

* सह आचार्य, जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०)

अनुशासन के रूप में ही विनय को समझाया गया है। **चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक** में विनय का महत्त्व बताते हुए कहा गया है “जो विनय है वही ज्ञान है। और जो ज्ञान है वहीं विनय है, विनय से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान से विनय जाना जाता है।”^७ विनय का महत्त्व बताते हुए कहा है मनुष्य के सम्पूर्ण सदाचार का सारतत्त्व विनय में प्रतिष्ठित होना है, विनय रहित तो निर्ग्रन्थ साधु भी प्रशंसित नहीं होते हैं। आगे यही भी कहा गया है कि अल्प श्रुतज्ञान से सन्तुष्ट होकर जो व्यक्ति विनय और पाँच महाव्रतों से युक्त है, वह जितेन्द्रिय है, आराधक है। यहाँ किसी शिष्य की महानता उसके द्वारा अर्जित व्यापक ज्ञान पर निर्भर नहीं है, वरन् उसकी विनयशीलता पर आधारित है। गुरुजनों का तिरस्कार करने वाले विनय रहित शिष्य के लिए तो कहा है कि वह लोक में कीर्ति और यश को भी प्राप्त नहीं करता है।^८ विद्या और गुरु का तिरस्कार करने वाले जो व्यक्ति मिथ्यात्व से युक्त होकर लोकेषणा में फंसे रहते हैं, ऐसे व्यक्तियों को ऋषि-घातक तक कहा है।^९

विनय गुण के पश्चात् आचार्य गुण की चर्चा करते हुए **चन्द्रवेध्यक** के २१ से ३१ गाथा में कहा गया है कि जो आचार्य पृथ्वी के समान सहनशील, पर्वत की तरह अकम्पित, धर्म में स्थित, चंद्रमा की तरह सौम्य कांति वाले, समुद्र के समान गंभीर हेतु और कारण के ज्ञाता होते हैं, उन आचार्यों की सभी प्रशंसा करते हैं। लौकिक, वैदिक, सामाजिक आदि शास्त्रों में जिनकी गति हो, जो स्वसमय और परसमय के जानकार हों, उन आचार्यों की सभी प्रशंसा करते हैं।^{१०} इस प्रकार आचार्य में छत्तीस गुण बतलाये गये हैं। **भगवती-आराधना** में भी आचार्य को आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, कर्ता तथा रत्नत्रय के लाभ और विनाश को दिखाने वाला, अपरिस्त्रावी आदि गुणों से युक्त कहा गया है।^{११} **भगवती आराधना** में आठ ज्ञानाचार, आठ दर्शनाचार, बारह प्रकार के व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति की चर्चा है।^{१२} **प्रवचन-सारोद्धार** गाथा ३२ से ३५ में कहा गया है कि आचार्यों की भक्ति से जहाँ जीव इस लोक में कीर्ति और यश प्राप्त करता है, वहीं परलोक में विशुद्ध देवयोनि और धर्म में सर्वश्रेष्ठ बोधि प्राप्त करता है। त्याग और तपस्या से भी महत्त्वपूर्ण गुरुवचन का पालन मानते हुये कहा गया है कि अनेक उपवास करते हुये भी जो गुरु के वचनों का पालन नहीं करता, वह अनंत संसारी होता है।^{१३} यदि किसी शिष्य में सैकड़ों दूसरे गुण भले ही क्यों न हों, किन्तु यदि उसमें यह गुण नहीं है तो ऐसे पुत्र को भी वाचना नहीं दी जा सकती है। चतुर्थ द्वार में विनय निग्रह गुण है। यहाँ विनय निग्रह का अर्थ आज्ञा पालन या आचार नियमों से है। इस प्रकार बौद्ध त्रिपिटक में **विनयपिटक** एक ग्रन्थ है जहाँ विनयव्रता के साथ आचार-नियमों का भी वर्णन है। विनय निग्रह द्वार में कुछ गाथायें ऐसी हैं जो आचार के नियमों को सूचित करती हैं।^{१४} इस गाथाओं में विनय का अर्थ आचार नियम ही प्रतिफलित है। इसीलिये विनय को मोक्ष का द्वार कहा गया है। सदा विनय का पालन करने की प्रेरणा दी गई है तथा कहा है कि शास्त्रों का थोड़ा जानकार पुरुष भी विनय से कर्मों का क्षय करता है। इसे मोक्ष में ले जाने वाला शाश्वत गुण कहा है।^{१५} साधु की प्रशंसा के लिये विनय गुण जरूरी ही नहीं नितांत आवश्यक है।^{१६} पंचम द्वार में ज्ञान गुण की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे पुरुष धन्य हैं, जो जिनेन्द्र

भगवान् द्वारा उपदिष्ट अति विस्तृत ज्ञान को समग्रतया नहीं जानते हुये भी चारित्र सम्पन्न हैं। आगे कहा गया है, जो ज्ञान है, वही क्रिया या आचरण है, जो आचरण है, वही जिनोपदेश का सार है और वहीं पर तत्त्व है।^{१७} यहां ज्ञान और क्रिया के बल पर विशेष बल दिया गया है। ज्ञान और क्रिया को एक दूसरे से अभिन्न बताया गया है, जो ज्ञान आचरण का विषय नहीं बनता, वह वास्तव में निरर्थक है। ज्ञान एवं सदाचार का समन्वय स्थापित किया गया है। ज्ञान ही मुक्ति का साधन है क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति संसार में परिश्रमण नहीं करता है।^{१८}

चारित्र गुण नामक छठे द्वार में उन पुरुषों को प्रशंसनीय बताया है, जो गृहस्थ रूपी बंधन से पूर्णतः मुक्त होकर जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट मुनि धर्म के आचरण हेतु प्रवृत्त होते हैं। जो पुरुष उद्यमी होते हैं वे क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति और जुगुप्सा को समाप्त कर देते हैं। वे परम सुख को खोजते हैं। चारित्र शुद्धि के बारे में बताते हैं। पांच समिति एवं तीन गुप्तियों में जिनकी मति है, जो राग द्वेष नहीं करता, उसी का चरित्र शुद्ध होता है।^{१९}

इस प्रकार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र की समन्वित साधना को ही स्वीकार किया गया है। उनमें किसी एक के अभाव से मोक्ष या साधना की प्राप्ति संभव नहीं है। **उत्तराध्ययनसूत्र** में भी कहा गया है, दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता और जिसमें ज्ञान नहीं है, उसका सम्यक् आचरण नहीं होता और सम्यक् आचरण के बिना आसक्ति से मुक्त नहीं हो सकता तथा जो आसक्ति से मुक्त नहीं उसका मोक्ष नहीं होता है।^{२०} सम्यक् दृष्टि से ही ज्ञान, आचरण और सदाचार सफल होते हैं। अतः सम्यक् दर्शन को ही प्राथमिकता दी गयी है।

सातवें अंतिम द्वार में मरण गुण पर ध्यान दिया गया है। मरण गुण में समाधिमरण की उत्कृष्टता का ज्ञान कराते हैं। वे कहते हैं कि विषय सुखों का निवारण करने वाली पुरुषार्थी आत्मा मृत्यु के समय में समाधिमरण की गवेषण करने वाली होती है। समाधिमरण किसका होता है, इस विषय में कहा गया है सम्यक् बुद्धि को प्राप्त अंतिम समय में साधना में विद्यमान पाप कर्म की आलोचना, निन्दा और गर्हा करने वाले व्यक्ति का मरण ही शुद्ध होता है। आगे कहते हैं कि वे साधु धन्य हैं, जो सदैव राग रहित जिन वचनों में लीन तथा कषायों से रहित हैं एवं आसक्ति एवं ममता रहित होकर निरन्तर सदगुणों में रमण करने वाले होते हैं। आगे की गाथाओं में आसक्ति त्याग पर बल दिया गया है क्योंकि आसक्ति ही बंधन में डालती है जिसके कारण जीव सांसारिक मोह-माया में फंसता है। परिणामस्वरूप उसके बंधन दृढ़ हो जाते हैं। जैसे व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं में मोह रखता है और हेय वस्तुओं को उपादेय मान लेता है। परिणामस्वरूप जन्म-मरण के चक्र में पड़ जाता है। मृत्यु के समय कोई वस्तु उसके साथ नहीं जाती और न उसे बचाने में सहायक हो सकती है। इसलिये जैन मतावलम्बी के लिये राग द्वेषों से मुक्त होकर समाधिमरण की बात कही गई है।

समाधिमरण लेने वाला साधक भी शरीर एवं उनमें उपस्थित सदगुणों की रक्षा करता है। इस प्रकार यह कंचन काया भी सांसारिक वस्तु ही है और सामान्यतया प्रत्येक प्राणी को सबसे अधिक आसक्ति अपने शरीर से ही होती है। बीमार होने की परिस्थिति में वह पहले शरीर को बचाने का प्रयास करता है। अर्थात् समाधिमरण के इच्छुक व्यक्ति सांसारिक मोह-माया से दूर हो जाते हैं। संसार के समस्त भौतिक सुख छोड़कर समाधिमरण धारण कर लेते हैं।

उपरोक्त विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय व्यवहार गुण, चारित्र गुण, विनय, त्याग, व्यवहार, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, आज्ञा पालन, समाधिमरण, कषायों से रहित जीवन वास्तव में ये सारे गुण मानव में जीवन मूल्य की स्थापना करते हैं जिससे मानव मन शान्ति एवं जीव रक्षा के लिये प्रेरित होता है। जीयो और जीने दो, के सिद्धांत पर बल देता है। मानव एक अहिंसक प्राणी के रूप में दिखाई देता है, यही अहिंसा, यही जीवरक्षा, यही मानव मूल्य, यही समता की भावना पर्यावरण संरक्षण नहीं है तो क्या है। पर्यावरण की समस्या अब सामने आई है जबकि तीर्थंकरों ने ये बातें पूर्व में ही कही हैं। वस्तुतः **चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक** में प्रतिपादित आदर्श एवं जीवन व्यवहार में प्रतिपादित तत्त्व पर्यावरण संरक्षक के पोषक है॥

सन्दर्भ :

१. मधुकर मुनि, **समवायांग सूत्र**, ८४वां समवाय।
२. **अभिधानराजेन्द्रकोश**, भाग-१, पृ० ४१.
३. सुरेश सिसोदिया, **चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक**, प्रका० - आगम अहिंसा एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर, प्रस्तावना, पृ० ४-५.
४. मधुकर मुनि, **नंदीसूत्र**, पृ० १६१-१६२.
५. **अभिधानराजेन्द्रकोश**, भाग-३, पृ० १०९७.
६. सुरेश सिसोदिया, **चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक**, गाथा ४०.
७. वही, गाथा ६२. ८. सिसोदिया, **चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक**, गाथा ४०.
९. वही, गाथा, ७ से ९. १०. वही, पृ० ९, गाथा, २२ से २६.
११. **भगवतीआराधना**, गाथा ४१९-४२०. १२. वही, गाथा ५२७.
१३. **प्रवचनसारोद्धार**, देवचंद्र लालभाई जैन पुस्कोद्धार, गाथा ५४१-५४९.
१४. सिसोदिया, **चंद्रवेध्यक प्रकीर्णक**, गाथा ५७ से ६३.
१५. वही, भूमिका, पृ० १५. १६. वही, पृ० १५, गाथा ६१-६३.
१७. वही, पृ० १६, गाथा ७७. १८. वही, गाथा, ८३-८४.
१९. वही, गाथा, ११४. २०. **उत्तराध्ययनसूत्र**, २८./३०



अर्द्धमागधी जैन आगम साहित्य में माला निर्माण- कला

डॉ० हरिशंकर पाण्डेय*

कामसूत्र में निर्दिष्ट ६४ कलाओं में १४वें स्थान पर माल्यग्रंथ कला का उल्लेख है। **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्ति** में महिलाओं के लिए निर्दिष्ट चौंसठ कलाओं में पुष्पग्रंथन का निर्देश है।

माला-निर्माण की कला अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक काल से लेकर आज तक मालानिर्माण की कला अविच्छिन्न है, क्योंकि इसका संबंध मानव जीवन से है। नित्यप्रति पूजा-पाठ, श्रृंगारादि में प्रतिदिन माला की आवश्यकता होती है। **सुश्रुत** एवं **चरकसंहिता** में 'मालाधारण' करना मानव के लिए अनिवार्य माना गया है। **शुक्रनीति** में स्पष्ट उल्लेख है कि वस्त्रों का सम्यक् परिधान, आभूषणधारण, ताम्बूल के साथ माला धारण करना कला के अंतर्गत आता है।^१ **अग्निपुराण** में शरीर को सुन्दर, सुगन्धित, प्रसन्न एवं स्वस्थ बनाने के लिए अन्य कृत्यों के साथ 'मालाधारण' भी अनिवार्य माना गया है। स्त्रियों के षोडशश्रृंगार में 'मालाधारण' महत्त्वपूर्ण श्रृंगार है।^२

माला का स्वरूप - व्युत्पत्ति एवं अर्थ - 'माङ्माने' धातु से 'ऋज्रेन्द्राग्रवज्रे' से रन् प्रत्यय, र < लत्व और टाप् (आ) करने पर स्त्रीलिंग में माला शब्द बनता है। 'माति मानहेतुर्भवति' अर्थात् जो सम्मान का कारण होता है या जिसे सम्मान होता है, उसे माला कहते हैं। मां शोभां लातीति अर्थात् मा अर्थात् लक्ष्मी, शोभा, समृद्धि को प्रदान करता है, वह माला है। श्रेणी, राजि, तती, वीची, आली, आवलि, पंक्ति, धारणी, माल्य, स्रक्, मालिका, मालाका, मालका आदि माला के पर्याय शब्द हैं।

आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर माला का वर्णन मिलता है। पुष्पामाला, रत्नों की माला आदि का उल्लेख है। कोरंट पुष्प की माला का अनेक स्थलों पर उल्लेख है - सकोरेंटमल्लदामेण^३, कोरंटकदाम^४, कोरेंटमल्लदाम^५। कटसरैया के पीले फूल को कोरेंट या कोरेन्टक कहते हैं। लाल रंग की कटसरैया को कुरबक कहते हैं।^६

सूत्रकृतांग में मणिसुवर्णों की माला एवं सामान्य माला का उल्लेख है। सूत्र धारण करने का भी उल्लेख है - सोणिसुत्तगमल्लदाम कलावे।^७ वहीं पर आविद्धमणिसुवर्णे कप्पियमाला मउली का भी निर्देश है - विचित्तमालामउलि।^८

स्थानांगसूत्र में माला के विभिन्न रूपों का उल्लेख मिलता है - गंधमल्ल, वणमालधरे।^९

* अध्यक्ष, प्राकृत एवं जैनागम विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू

ज्ञाताधर्मकथा में अनेक प्रकार के माला-प्रभेदों का वर्णन मिलता है। सुइमाला^{१०}, सकोरेंटमल्लदा मेंण^{११}, ववगयमाला^{१२}, चंपगमाला^{१३}, पुप्फगंधमल्ला-लंकारहारं^{१४}। **उपासकाध्ययन** में मालतीपुष्प के माला का वर्णन है। गाथापति आनन्द मालतीपुष्प की माला को छोड़कर अन्य मालाओं की परित्याग कर देता है।^{१५} पुष्पमाला के अतिरिक्त रत्नों की माला का भी वर्णन मिलता है।

श्रीदामगण्ड - एक स्थल पर वर्णन है कि साकेत नगर की रानी 'नाग-पूजा महोत्सव' का आयोजन करती है। उसमें में विभिन्न प्रकार के सुगंधित पुष्पों द्वारा मण्डप बनाया गया। इस मण्डप में दिग्दिगन्त तक अपनी सुरभि को फैलाने वाला एक 'श्रीदामगण्ड' लटकाया गया। यह श्रीदामगण्ड 'शोभा सम्पन्न मालाओं' के समूह का वाचक है।

कुंभ राजा की पत्नी पद्मावती एक रात मंगलकारक चौदह महास्वप्न देखती है, जिसमें पुष्पमाला भी है। प्रभावती के गर्भ-धारण के तीन मास पश्चात् दोहद उत्पन्न होता है - जिसमें वह विभिन्न श्रेष्ठ एवं सुगंधित पुष्पों से बने का श्रीदामगण्ड की प्राप्ति की इच्छा करती है। इस प्रसंग में श्रीदामगण्ड का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। पाटला, मालती, अशोक, पुंनाग, मरुआ, दमणक एवं निर्दोष शतपत्रिका के पुष्पों के साथ उत्तमकोरंट के पत्रों को गूँथ कर बनाया जाता है, जो स्पर्श में परमसुखदायक, देखने में सुन्दर तथा अत्यन्त सुगंध से परिपूर्ण होता है।^{१६} पद्मावती की इच्छापूर्ति के लिए वाणमंतर देव सुगंधित 'श्रीदामगण्ड' पद्मावती को प्रस्तुत करते हैं। पद्मावती उन्हें सूँधती हुई अपनी इच्छा पूर्ण करती है।^{१७} पद्मावती के नागयज्ञ में अनेक मालाकार मिलकर 'श्रीदामगण्ड' का निर्माण करते हैं।^{१८} **ज्ञाताधर्मकथा** में अन्यत्र भी विभिन्न स्थलों पर इसका उल्लेख है - महं सिरिदामगण्ड।^{१९}

कुणाला जनपद के श्रावस्ती नगरी के राजा की पुत्री सुबाहु के चातुर्मासिक स्नान उत्सव के अवसर पर उसे 'श्रीदामगण्ड' विशिष्ट गंधयुक्तसपत्र पुष्पहार दिया जाता है।^{२०} राजवरकन्या द्रौपदी-पाटला, मल्लिका और चम्पक के पुष्पों से बनी परमसुखस्पर्शकारक और दर्शनीय 'श्रीदामगण्ड' को ग्रहण करती है।^{२१}

आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख है - सिरिदामगण्डं मल्लं।^{२२}

आगमटीकाकार ने माला को बाह्य शोभाकारक पदार्थ माना है। **निशीथसूत्र** (७.१) में १६ प्रकार के मालाओं का निर्देश है -

१. तणमालियं (तृण की माला), वीरण (खश) आदि की माला तृण माला है। आज भी इसका प्रचार है। २. मुंजमालियं - 'मुंज' एक प्रकार का पवित्र घास है। पूजादि में इसका प्रभूत प्रयोग होता है। मुंज से बनी माला 'मुंजमाला' है। उपनयन संस्कार के समय अथवा दीक्षा धारण करते समय इसका प्रयोग किया जाता है। ब्रह्मचारियों को यह बहुत प्रिय है। यह तत्पश्चरण का प्रतीक है। इसे मौञ्ज भी कहते

हैं। कालिदास ने इसे तीन लड़ों वाली माला माना है, जिसे तपश्चरणकाल में पार्वती ने धारण किया था। ३. वेतमालियं - वेत काष्ठ की माला। ४. कट्टमालियं-काष्ठ की माला-चंदन, तुलसी एवं अन्य सुगंधित लकड़ियों की माला 'कट्टमालियं' है। आगमकाल में काष्ठ माला का प्रयोग बहुतायत होता था। ५. पत्तमालियं - पत्तों की माला। ६. भिंडमालियं - भींड की माला। ७. मयणमालियं - मोम की माला अथवा मदन (वृक्ष-विशेष) के पुष्प की माला (निशीथ ७.३ पर चूर्णि) ८. पिच्छमालियं- मोर पंख की माला। ९. दंतमालियं - हाथी के दांत की माला। (निशीथ चूर्णि ७.३४) १०. सिंगमालियं - सींग की माला। ११. संखमालियं - शंख की माला।

१२. हड्डमालियं - हड्डियों की माला। बन्दर की हड्डियों की माला जो बच्चों के गले में पहनायी जाती है। (निशीथ चूर्णि ७.३) १३. पुष्पमालियं - पुष्पों की माला। १४. फलमालियं - फलों की माला। रुद्राक्षादि के फलों की माला। १५. बीजमालियं - बीजों की माला। १६. हरियमालियं - हरित-वनस्पति की माला।

इस प्रकार आगम साहित्य में अनेक प्रकार के पुष्पमालाओं के निर्माण संबंधी प्रमाण उपलब्ध हैं। माला निर्माण में जो निपुण होते थे उन्हें मालाकार (माली) कहा जाता था। मालाकार शब्द का आगम-साहित्य में अनेक स्थलों पर उल्लेख है। राजगृह में अर्जुनक नाम का मालाकार रहता था। वह अपने पुष्पाराम (पुष्पों के बाग) से प्रतिदिन फूलों की टोकरी लेकर फूल चुनने के लिए जाता था। उसके उद्यान में दस रंगों के सुगंधित पुष्प खिलते थे^{२३} वहीं पर मालाकारिणी का भी उल्लेख है।^{२४}

माला निर्माण में उपयोग किए जाने वाले पुष्पों एवं अन्य वनस्पतियों का आगम साहित्य में प्रभूत रूप से उल्लेख मिलता है। जिनका संक्षिप्त निर्देश इस प्रकार है-

अइमुत्तकलया (माधवीलता जीवाभिगम, ३.५८४), अगरु-अगर (राजवार्तिक ३०), अत्तिमुत्त-कस्तूरीमोगरा (जीवाभिगम ३.२९६), असोग-अशोक (भगवती २२.२, जीवाभिगम १.७१), कच्छाभद्रमुस्त-मोथा (प्रश्नव्याकरण १.४६), करीर-केर-करील (प्रश्नव्याकरण १.३७.४), उसीर-खस (राजप्रश्नीय ३०, जीवाभिगम ३.२८३), कदंब-कदम (औपपातिक ९, जीवाभिगम ३.५८३), कप्पूर-कपूर (राजप्रश्नीय ३०, जीवाभिगम ३.२८३), कल-गोलोचना (स्थानांग ५.२०९, भगवती ६.३०), कुंकुम-केशर (राजप्रश्नीय ३०, जीवाभिगम ३.२८३), कुंद (भगवती २२.५, राजप्रश्नीय २९), ग्रीवा, कुरुविंद-नागरमोथा (प्रश्नव्याकरण १.४२.२), केतकि, केतगि, केयइ - केवड़ा (जीवाभिगम ३.२८३, राजप्रश्नीय ३०, भगवती २२.१), कोकणद-लालकमल (प्रश्नव्याकरण १.४६), कोदाक-कोविदार (जीवाभिगम ३.५१२), चंदण (भगवती २२.३, औपपातिक ९, राजप्रश्नीय ३०), चंपअ-चंपक (स्थानांग ८.११७.२, जीवाभिगम ३.५८०), जाई-चमेली (प्रश्नव्याकरण १.३८.२), जावति-जावित्री

(भगवती २२.१), जासुअण, जासुमण जासुवण-जवाकुसुम (राजप्रश्नीय २७, प्रश्नव्याकरण १.४०.३), जूहिया-जूही (राजप्रश्नीय ३०), डम्भ-सफेद-दूब (प्रश्नव्याकरण १.४२.१), णीलुप्पल, नीलकमल (राजप्रश्नीय २६), तगर (राजप्रश्नीय ३०), तिमिर-मेहंदी (भगवती २१.१८), तुलसी (स्थानांग ८.११७.१, प्रश्नव्याकरण १.४४.३) देवदारु (प्रश्नव्याकरण १.४०.२), बउल-मौलसिरी (भगवती २२.२, प्रश्नव्याकरण १.३४.१), भद्मुत्था, भद्मोत्था, भद्मोत्था-मोथा (भगवती २३.८), मगदंतिया-मालती (प्रश्नव्याकरण १-३८.२), मोगर-मोगर (प्रश्नव्याकरण १.३८.२) सरिसव-सरसों (भगवती २१.१६, प्रश्नव्याकरण १.४५.२), सुभग-कमल (जीवाभिगम ३.२८६), सुभगा-सेवती गुलाब (प्रश्नव्याकरण १.४०.२), हरियाल-दूब (राजप्रश्नीय २८), हलिदा (जीवाभिगम ३.२८), हलिदी (उत्तराध्ययन ३४.८), हलिदा-हल्दी (राजप्रश्नीय २८)।

उपर्युक्त पदार्थों का प्रसाधन-शरीर एवं मुख के उबटन, विलेपन, अंगराग आदि में प्रयोग होता है। पुष्पों को स्त्रियां अपने बालों में धारण करती हैं, माला का भी निर्माण होता है। इस प्रकार जैनागम साहित्य में प्रसाधन का प्रभूत वर्णन मिलता है। प्रसाधन-कला पर स्वतंत्र शोधकार्य की आवश्यकता है।

सन्दर्भ :

१. शुक्रनीति, ४.३.१३५-१३७, १९८. २. उणादिसूत्र, २.२८.
३. ज्ञाताधर्मकथा, १.१.२४, ३३. ४. राजप्रश्नीय, २८.
५. प्रज्ञापना, १७.१२७. ६. जैनागम वनस्पति कोश, पृष्ठ ९१.
७. सूत्रकृतांग २.२.३१. ८. वही, २.२.६९, ७३.
९. स्थानांग, ८.१०. १०. ज्ञाताधर्मकथा, १.१.२४.
११. वही, १.१.२४. १२. वही, १.१.५३.
- १३-१४. वही, १.१.३४. १५. उपासकाध्ययन १.१.२९.
१६. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, १.८.३१. १७. वही, १.८.३१.
१८. वही, १.८.४९. १९. वही, १.८.५७, ५८, ६०, ६२.
२०. वही, १.८.९२. २१. वही, १.८.१६२
२२. समवायांगसूत्र, २१.११. २३. अंतकृद्दशांग, ६.१०.
२४. वही, ६.२४.



आगमिक मान्यताओं में युगानुकूलन

नंदलाल जैन*

आगमों की प्रामाणिकता के आधार

जैनों में आजकल आगम, शब्दार्थ (उत्तान?) और कुछ प्रचलित परम्पराओं की अंतर्विवेचना का युग चल रहा है। आगमों का आधार लेकर नये-नये प्रश्नों को उपस्थित किया जाता है। इन प्रकरणों में आगमों की सत्यता प्रकट करते हुए अपने-अपने मत प्रतिपादित किये जा रहे हैं। प्रायः 'आगम' शब्द से पवित्र ग्रंथों का बोध होता है। ये पवित्र ग्रंथ प्रत्येक धर्मतंत्र में पाये जाते हैं, पर जैनों में एक नहीं, इनकी एक दीर्घ श्रेणी है। वस्तुतः मूल प्रश्न है - आगम क्या हैं और उनकी प्रामाणिकता कितनी है? क्या वे त्रिकाल-सत्य हैं? आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया है कि यद्यपि आज श्रुत और आगम समानार्थी से माने जाते हैं पर उनमें बहुत अंतर है। 'श्रुत' शब्द अधिक प्राचीन है और उसमें अंशतः विसंवादिता और अंशतः अविसंवादिता भी होती है। इसके विपर्यास में, 'आगम' सदैव अविसंवादी माना जाता है। इस शब्द के अनेक पर्यावाची हैं जिनमें श्रुत, शास्त्र, जिनवाणी, जिनवचन या आप्तवचन आदि मुख्य हैं। शास्त्रों के अनुसार, जिनवाणी तो

१. अठारह दोष रहित एवं वीतराग द्वारा कथित
२. खण्डन रहित
३. प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाणों से अबाधित
४. बाधक प्रमाण रहित

५. युक्ति-शास्त्र-अविरोधी या अविसंवादी होती है। इसकी प्रामाणिकता के ये ही आधार हैं। महाप्रज्ञ का कथन है कि अविसंवादी आगम तो स्वतः प्रमाण हैं और अंगबाह्य श्रुत आगम-आधारित होने से परतः प्रमाण होते हैं।

दिगम्बर जैनों के इतिहास से हमें पता चलता है कि दिगम्बरों की उत्कट तपो-साधना के बावजूद भी क्रमिक प्रज्ञा-हानि एवं स्मृतिहानि के कारण तथा अन्य कारणों से भी, हम वर्तमान जिनवाणी को महावीर निर्वाण के ६८३ वर्ष (या १५६ ई०) के बाद केवल अंशतः ही स्मृति में रख सके। पं० कैलाश चंद्र शास्त्री के अनुसार गुरु-शिष्य-परंपरा की सुदृढ़ नींव और तपोबल की शक्ति के भ्रम में दिगम्बरों ने जिनवाणी

* जैन सेन्टर, रीवा, म०प्र०

के संकलन की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया। इसके साथ ही, जिन्होंने यह संकलन किया, उस पर प्रश्न चिह्न भी लगा दिया। इस परिस्थिति में आचार्य धरसेन को अवशिष्ट अंश के लोप की शंका हुई, तो उन्होंने दो शिष्यों को, जो उन्हें स्मरण था, आगमज्ञान दिया जिससे दिगंबरों के प्रथम आगम-कल्प ग्रंथ रचे गये। इसके उत्तरवर्ती काल में अनेक ग्रंथ रचे गये। ये सभी आचार्य आरातीय (दूरवर्ती), कम से कम महावीर निर्वाण से ६८३ (वर्ष पश्चात्) कहे जाते हैं। उनके रचे ग्रंथों को ही हम उपचार से 'जिनवाणी' कहते हैं। वस्तुतः वे 'आचार्यवाणी' हैं। उन्हें जिनवाणी मानने के आधारों पर मूल्यांकित कर सकते हैं।

इसके आधार पर आज हमें विभिन्न शास्त्रों में अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं जो उपरोक्त आधारों पर खरे नहीं प्रतीत होते हैं। साथ ही, ऐसा भी लगता है कि ये शास्त्र अपने युग के ज्ञान-विज्ञान को प्रस्तुत करते हैं। इसीलिये उनमें आधुनिक भौतिक जगत् में आविष्कृत अनेक विवरणों का संकेत भी नहीं है। इस संबंध में अनेक सूचनायें **तुलसी प्रज्ञा २३-४, पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री साधुवाद ग्रंथ एवं साइंटिफिक कन्टेन्ट्स इन प्राकृत केनन्स** में दी गई हैं। वहां विसंवादिता के ८१ विवरण दिये गये हैं। इनमें (१) महावीरोत्तर ६८३ वर्ष की आचार्य परम्परा की उपलब्ध विविधता (२) शास्त्रों में पूर्वापर विरोध, (३) भौतिक जगत् के विवरणों में विसंगतियां तथा (४) आचार सम्बन्धी विसंगतियां समाहित हैं। इसके साथ ही, जिनवाणी को 'सर्वज्ञता' के सिद्धांत के आधार पर हमने 'स्थिर तथ्यी' माना है, उसके परे कोई ज्ञान ही नहीं है। निरंतर परिवर्तनशील जगत् एवं जीव में स्थिर-तथ्यता की बात भी आज के युग में गले नहीं उतरती। ज्ञान तो प्रवाहशील होता है। उनमें ऐतिहासिक तथ्यता की स्वीकृति अधिक रुचिकर होगी। इसीलिये उसके विवरणों को बिना परीक्षा किये, वैज्ञानिकता भी प्राप्त नहीं हो पाती। **उत्तराध्ययन** भी कहता है कि प्रज्ञा से धार्मिक सिद्धांतों की परीक्षा करनी चाहिये। हमारे चौथी-पांचवी सदी के और उसके उत्तरवर्ती सिद्धसेन, समंतभद्र, अकलंक, विद्यानंद आदि आचार्यों ने परीक्षा प्रधानी बनकर इसे वैज्ञानिकता प्रदान करने का प्रयास किया है। सिद्धसेन ने अपनी **द्वात्रिंशिका** में कहा है कि मैं पूर्वजों द्वारा स्थापित सिद्धांतों व्यस्थाओं को तथैवेति मानने का पक्षधर नहीं हूँ। मैं उनकी परीक्षा करूंगा, चाहे कोई माने या न माने। यही कारण है कि विभिन्न शास्त्रों के विवरणों में समय-समय पर परिवर्तन, संवर्धन, संशोधन, नामांतरण, क्रम-परिवर्तन तथा विलोपन आदि की प्रक्रियायें अपनाई गई हैं। ज्ञान के विकास का राजमार्ग इन्हीं प्रक्रियाओं से अधिक व्यापक और उपयोगी होता है। फलतः हमें विद्यमान आगम-कल्प ग्रंथों के विवरणों के संदर्भ में पूर्वापर अविगोधिता की दृष्टि से विचार करना चाहिये।

यह वैज्ञानिक युग है और हम अपने धर्म की वैज्ञानिकता तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति को प्रसारित भी करते हैं। वर्तमान में सभी साधु एवं गुरुजन विज्ञान और धर्म समन्वय

का उपदेश भी देते हैं। पर विज्ञान की अपनी सीमा है। वह अभी भौतिक जगत् और जीवन से संबंधित घटनाओं की ही आंशिक या समग्र व्याख्या करने का प्रयोगबद्ध प्रयत्न करता है। अध्यात्म जगत् अभी उसकी सीमा से परे है, यद्यपि उस क्षेत्र में यह प्रवेश करता प्रतीत होता है।

आजकल क्या, प्रत्येक युग में परम्परावादी और मध्यमार्गी परम्परायें रही हैं। पहली परम्परा चिर-प्रतिष्ठित मान्यताओं को त्रैकालिक मानती रही है और दूसरी परम्परा मान्यताओं और विचारों में युगानुकूल परिवर्तन की पोषक रही है। यह सही है कि मध्यमार्गी परम्परा के अनुयायियों की संख्या कम रही है और उन्हें परम्परावादियों के आक्रोश का भाजन भी बनना पड़ता है। पश्चिम में तो मध्ययुग में और अभी भी पर्याप्त मात्रा में, यह आक्रोश विकराल रहा है, पर भारत में ऐसी स्थिति नहीं आई। इसका कारण यह है कि प्रारंभ के आचार्य तो, नेमचन्द्र शास्त्री के अनुसार, श्रुतधर, सारस्वत और प्रबुद्ध कोटि के थे उन्होंने जैन मान्यताओं को युगानुरूप बनाये रखने का प्रयत्न किया। उसके उत्तरवर्ती काल में परम्परापोषक आचार्यों और भट्टारकों की परम्परा चली। उन्हें विदेशी आक्रमणों, राजकीय विरोधों तथा साहित्य भण्डारों/मंदिरों के विध्वंसों के कारण अन्तर्मुखता धारण करनी पड़ी। उन्होंने 'जो है सो' उसके परिरक्षण की वृत्ति अपनाई। इससे आज हमारा शास्त्रीय ज्ञान दसवीं-ग्यारहवीं सदी की मान्यताओं के परिरक्षण पर आधारित है। यह पिछले एक हजार वर्ष में हुई बौद्धिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्ति और वर्धमान ज्ञान-क्षितिज के प्रति न केवल उदासीन है, अपितु शास्त्रीय विवरणों को ही वरीयता देता है। यह जैन धर्म की वैज्ञानिकता को घोषित करने की प्रवृत्ति और मानसिकता के प्रतिकूल है।

इसके बावजूद भी परम्परावादियों की तुलना में जैनों में प्रत्येक युग में प्रगतिशील आचार्य और विद्वान् भी हुए हैं जिन्होंने धार्मिक सिद्धांतों एवं आचार-विचारों में युगानुकूलन बनाये रखने का प्रयत्न किया। इनमें पूर्व में दिये गये आचार्य सिद्धसेन के अतिरिक्त, पुराण युग के अनेक आचार्य, जिनसेन, लोकाशाह, तारणस्वामी, ब्र० शीतल प्रसाद, स्वामी सत्यभक्त, अमर मुनि, आचार्य तुलसी, कानजी स्वामी आदि प्रमुख हैं। इनके कारण जैन धर्म में वैज्ञानिकता एवं आधुनिकता के बीज पुष्पित होते रहे हैं।

पश्चिमी विचारकों ने ईसाई जगत् के उदाहरण से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जिनमें एक यह है कि धर्म आधुनिकता और वैज्ञानिकता का विरोधी है। उन्होंने इस निष्कर्ष को भारतीय धर्मों पर भी प्रयुक्त किया है, जो सही नहीं है। इसी प्रकार, कार्ल मार्क्स ने भी कहा है कि विभिन्न धर्म नव परिवर्तन के प्रति अरुचिशील होते हैं एवं बौद्धिक स्वतंत्रता के शत्रु हैं। उसका कथन है कि मनुष्य बिना धर्म के भी अच्छा नैतिक रह सकता है। संगठित धर्म तो यथास्थितिवादी होते हैं। अमरिका में १९९९ में की गई एक शोध से पता चलता है कि -

१. उच्च शिक्षा जितनी अधिक होगी, धार्मिकता उतनी ही कम होगी।
२. आय जितनी अधिक होगी, धार्मिकता उतनी ही कम होगी।

यहां धार्मिकता से तात्पर्य अमूर्त तत्त्वों में विश्वास और भक्ति है। धर्म प्रायः अमूर्त तत्त्वों की सत्यता की परीक्षा करते हैं। इस क्षेत्र में अभी विज्ञान नहीं पहुंचा है। पश्चिमी विचारकों के ये निष्कर्ष परीक्षा प्रधानी जैनधर्म पर लागू नहीं होते। इसमें व्याख्याओं एवं परिवर्तनों के प्रति रुचि रही है। इसने अन्यो द्वारा आरोपित व्यक्तिवादी चरित्र और सिद्धांतों को सामाजिक एवं विश्वीय रूप दिया है। यह अपनी प्राचीन मान्यताओं के परीक्षण एवं परिवर्धन के प्रति जागरूक है। यह तथ्य आगे दिये विवरणों से स्पष्ट हो जायेगा।

आगम या आगम-कल्प ग्रंथों का स्वरूप

जैन समग्रतः अनेकांतवादी हैं और व्यवहारतः नयवादी भी हैं। इनके अंतर्गत, **धवला** के अनुसार छह निक्षेपों के आधार पर अथवा यदि नाम और स्थापना को छोड़ दिया जाय, तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार वस्तु तत्त्व का वर्णन किया जाता है। जीव तत्त्व के विवरण में भव भी एक आधार होता है। इस दृष्टि से हम देखें, तो हमारे आगम-कल्प ग्रंथों का विवरण निम्न रूप में दिया जा सकता है :-

१. द्रव्य दृष्टि से : आरातीय (परवर्ती) आचार्यों द्वारा रचित है।

२. क्षेत्र दृष्टि से : मगध (पाटलिपुत्र), मथुरा, हाथीगुंफा या वलभी में संकलित हुए हैं।

३. काल दृष्टि से : इनका ग्रंथ-संकलन काल ३६० ई०पू० से ४५३-६३ ई०पू० के बीच है और अर्थ की दृष्टि से अनादि की मान्यता के बावजूद भी, ये पार्श्व (८७७-७७७ ई०पू०) और महावीर (५९९-५२७ ई०पू०) के काल में दिव्य-ध्वनित किये गये थे। उत्तरवर्ती ग्रंथ भिन्न-भिन्न समयों में रचे गये हैं।

४. भाव की दृष्टि से : इनके रूप में विभिन्न वाचनाओं के समय परिवर्धन किया जाता रहा है। पार्श्वनाथ की सचेत-अचेत धारणा महावीर-युग में अचेत में परिणत हुई। पंचाचार आचार-त्रिक में संक्षिप्तीकृत हुआ। अनेक नई अवधारणायें जुड़ीं। संकलित या संशोधित आगमों को किसी ने मान्य किया और किसी ने अमान्य। किसी ने ११ अंगों का लोप बताया, तो किसी ने मात्र दृष्टिवाद का। शास्त्री ने कहा कि दिगंबरों को संकलन की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं हुई क्योंकि सार्वजनिकता की धारणा आगमों पर लागू नहीं होती। पर मूल रचयिता की दृष्टि से, ये पार्श्वनाथ एवं महावीर के तीर्थंकर भव में निर्मित हुए थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे आगम या आगम-कल्प ग्रंथ विशेष क्षेत्रों में, विशेष कालों में, विविध रूपों (अर्थ, ग्रंथ) में रचित हुए हैं।

शास्त्रीय मान्यताओं के कारण वर्तमान समस्यायें :

(अ) क्षेत्रगत दृष्टि : जैन भूगोल विश्व को स्थिर मानता है, पर पिछले और आज के भौगोलिक परिवर्तनों को देखते हुए यह अवधारणा विचारणीय है। शास्त्रों पर अश्रद्धान हो, इसलिये एक विश्रुत परम्परावादी पंडित (मेरे गुरु, अब स्वर्गीय) ने मुझे सुझाव दिया था कि इस विषय में समाज में चर्चा ही नहीं करनी चाहिये। अब क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है, मगध क्षेत्र में उपदिष्ट अर्थागम एवं वहीं पर संकलित आगम संपूर्ण भारत एवं विश्व क्षेत्री मान लिये गये। इस क्षेत्र परिवर्तन से अनेक समस्यायें सामने आई हैं:

१. क्षेत्रगत समस्या : विश्व के विभिन्न क्षेत्रों (यूरोप, अमरीका, ग्रीनलैंड, उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव आदि) में सूर्योदय, सूर्यास्त की अनेक विविधताओं (१८ घंटे की रात या दिन, छह महीने की रात या दिन आदि) के कारण इसके आचार (जैसे रात्रि-भोजन-त्याग, कुंए का पानी, कंडे एवं लकड़ी की आग से बना भोजन, देवपूजा या स्थंडिल भूमि या मिट्टी पर शौच आदि) का पूर्णतः पालन नहीं हो सकता।

२. औद्योगीकरण का प्रभाव : इसके कारण व्यस्त हो रही जीवनचर्या में तथा शीत ऋतु की जटिलता के कारण सामान्य आहार की चर्चा कठिन हो जाती है। फलतः प्रशीतित एवं शीघ्रभक्ष्यी खाद्य और उनकी विविधता स्वीकार करनी पड़ती है जो तीर्थंकर के संपादक के अनुसार हानिकारक है। इन परिस्थितियों में साधुधर्म, विशेषतः दिगम्बर साधु धर्म, का पालन भी नहीं हो सकता। फलतः विश्व की ९९.९८% जनता (जैन तो मात्र ०.०२ प्रतिशत ही हैं) जैन सिद्धांतों के ज्ञान, पालन एवं जीवन-लक्ष्यों की प्राप्ति से विमुख ही रहेंगे। ऐसी स्थिति में जैन धर्म की विश्वधर्म की मान्यता का अर्थ क्या है? इसके लिये उसे अपनी आचार-प्रक्रिया में क्षेत्र-काल-भाव-गत परिवर्धन आवश्यक है।

३. भक्तिवाद : विश्व के अधिकांश धर्म भक्तिवाद के प्रचण्ड उद्घोषक हैं और उसी का वातावरण बना रहे हैं। 'तारणहार' की मनोवैज्ञानिकता से स्वावलंबी जैन संस्कृति महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होती है।

४. जनभाषा : पार्श्व और महावीर ने जनभाषा में उपदेश दिये थे और जिनवाणी भी सर्व समाहारी अर्ध-मागधी भाषा में ग्रंथित हुई हुई है। विश्व के प्रायः सभी देशों की जनभाषा भिन्न-भिन्न है। जिनवाणी इन भाषाओं में नहीं है। अतः उसकी प्रभावकता कैसे विश्वव्यापी हो सकती है ?

(ब) काल दृष्टि : जैनों ने काल को लक्षण परिणाम, क्रिया आदि के रूप में परिवर्तनशील माना है। उन्होंने काल की न केवल त्रितयी मानी है, अपितु उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के रूप में काल-आधारित भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति एवं अवनति मानी है। यही नहीं, किसी भी एक चक्र के एक ही काल में हासमान (या वर्धमान) परिवर्तन माने हैं। इस तरह कालिक परिवर्तन के आधार पर भी आचार-विचारों की परिवर्तनशीलता स्पष्ट है। उदाहरणार्थ, जैनों का प्रारंभ महावीर के एक-आचार्यो पथ से हुआ था, पर काल के प्रभाव से आचार्य यशोधर के समय दो आचार्यों (संभूतविजय, भद्रबाहु) की परम्परा चल पड़ी और महावीर धर्म दो रूपों में हो गया। अब तो जितने ही आचार्य, उतने ही रूप की स्थिति आ गई है। उपरोक्त दोनों के आचार-विचार निरूपण में भी अंतर आ गया। कैलाश चन्द्र जी शास्त्री ने बताया है कि गुरु और शास्त्र भेद के साथ देवमूर्तियों के निर्ग्रन्थ रूप में भी कालांतर में परिवर्तन हुआ। इनके ही समय में, आगमों की मान्यता/अमान्यता का प्रश्न उठ पड़ा था। इस प्रकार, कालिक दृष्टि से भी आगमों में परिवर्तन होते रहे हैं और वे अविरल चलते रहेंगे। तथापि, बौद्धिक जगत् यह मानता है कि वर्तमान में उपलब्ध आगम रूप से मान्य आगम या आगम-कल्प ग्रन्थ काल की ऐतिहासिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं, सार्वत्रिक एवं सार्वकालिक दृष्टि से नहीं।

(स) भाव दृष्टि : भाव दृष्टि से भी जिनोपदेशों में परिवर्तन हुआ है। उदाहरणार्थ महावीर ने निम्न परिवर्तन किये :

१. क. त्रियाम और चातुर्याम धर्म का पंचयाम धर्म में परिवर्तन, ख. दैनिक प्रतिक्रम की अनिवार्यता, ग. अष्ट प्रवचन माता (समिति, गुप्ति) की धारणा, घ. अचेलकत्व की प्रतिष्ठा व मोक्ष मार्ग में अनिवार्यता, ङ. रात्रिभोजन विरमण व्रत का सुज्ञाव, च. छेदोपस्थापना चारित्र की धारणा

सैद्धांतिक मान्यताओं में परिवर्तन :

२. आगमों में छह अणुव्रतों की धारणा है, जो पांच अणुव्रतों में परिवर्तित हुई।

३. पुष्पदंत-भूतबलि के षट्खंडागम में सिद्धों के लिये पृथक् से आयाम दिये हैं, जैसे पांच गति, छह इंद्रिय आदि। इसे उत्तरवर्ती आचार्यों ने नहीं माना।

४. अकलंक ने प्रत्यक्ष के विरोधी परिभाषा के पारमार्थिक एवं सांख्यव्यवहारिक-२ भेद किये।

५. अनुयोगद्वार ने परमाणु के निश्चय और व्यवहार-दो भेद किये जो जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में भी आये।

६. प्रमाण की परिभाषा तो अनेक आचार्यों ने 'ज्ञान प्रमाण' से लेकर 'स्वापूर्वार्थ-व्यवसायात्मक ज्ञान प्रमाण' तक परिवर्धित की।

७. कुंदकुंद के युग में जहां आचार-पंचक था, उसे परिवर्तित कर उमास्वाति ने आचार-त्रिक किया।

८. लौकिक या पापश्रुत की संख्या सदैव बदलती रही है।

८ए. हमने श्रावक के सात व्यसन एवं आठ मूलगुण की उत्तरवर्ती धारणा भी स्वीकृत की।

९. कुंदकुंद के युग के सल्लेखना-गर्भी बारह व्रत उमास्वामि के युग में सल्लेखना बाह्य हो गये। समंतभद्र और उमास्वाति ने श्रमणधर्म को श्रावकीकृत भी किया।

१०. उमास्वाति ने आध्यात्मिक तत्त्वों की ९ व ११ की परंपरा को सप्त तत्त्वी बनाया एवं बंध-मोक्ष तत्त्वों का क्रम अधिक संगत बनाया।

११. उमास्वाति ने कुंदकुंद के निश्चय-व्यवहार एवं ग्यारह प्रतिमाओं पर मौन रखा। ये उत्तरवर्ती विकास प्रतीत होते हैं।

१२. अकलंक ने उपयोग की परिभाषा में, ज्ञान दर्शन के अतिरिक्त सुख और वीर्य को भी समाहित किया।

१३. **कल्पसूत्र** और अन्य ग्रंथों में ऐकेंद्रिय से चार इंद्रिय तक के जीवों में संमूर्छन जन्म के साथ गर्भ जन्म को भी मान्यता दी है।

१४. हिंसा के द्रव्य-भाव रूप के अतिरिक्त अनेक प्रकार के भेदों का विस्तार उत्तरवर्ती आचार्यों ने किया और उसे चतुर्विध बनाया।

१५. जैनों ने “वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति” का खण्डन करने के बावजूद भी ‘पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य, सावद्यालेशो बहुपुण्यराशी’ के आधार पर जैन धार्मिक कार्यों-पूजा, अभिषेक, आरती, प्रतिष्ठा, विधान, गजरथ आदि में होने वाली हिंसा को लंशमात्र सावद्य का नाम देकर अनुमोदित किया है। यही नहीं, **पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय** गाथा ७९ के टिप्पण में तो यह भी कहा गया है कि सावद्यलेशी धार्मिक कार्यों में धर्मानुराग तथा लोभकषाय का अल्पीकरण होता है। भौतिक या आध्यात्मिक उद्देश्य के लिये किये जाने वाले वैदिक या जैन-धार्मिक कार्य बिना संकल्प और आशीर्वाद के हों, यह विमर्शनीय विषय बन गया है। संकल्प और सावद्यलेश किंचत् विरोधी से प्रतीत होते हैं। यह एक विचारणीय विषय है।

१६. जैनों ने प्रवाह्यमान (नागहस्ती) एवं अप्रवाह्यमान (आर्य मंक्षु) आदेशों को भी मान्यता दी है।

१७. हमने **पंचास्तिकाय** की गाथा १११ (अमृतचंद्र) को भी स्वीकार किया जिसमें ऐकेंद्रिय के तीन प्रकारों को स्थावर (पृथ्वी, वनस्पति व जल) व अग्नि एवं

वायुकाय को त्रस कहा गया है। यह दिगम्बर तत्त्वार्थसूत्र से सम्मत नहीं है। संभवतः गतिन्त्रसत्त्व यहां अभीप्सित हो लब्धित्रसत्त्व नहीं।

१८. उमास्वामि के पूर्व 'प्रमाण' की चर्चा विलुप्त-सी थी, उमास्वामि ने इसे 'ज्ञान प्रमाण' से प्रारंभ किया।

१९. हमने अर्धफालक और यापनीय संप्रदायों को अपने गर्भ में समाहित किया है जिनके अनेक सिद्धांत मूल परम्परा से मेल नहीं खाते।

ये सैद्धांतिक मान्यताओं में परिवर्तन के कुछ निरूपण हैं। गहन अध्ययन करने पर ऐसे ही अनेक परिवर्तन और प्राप्त हो सकते हैं। इन मान्यताओं के समान आचारगत मान्यताओं में भी परिवर्धन हुआ है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

आचारगत मान्यतायें :

१. साधुओं के मूल गुण : यह सुज्ञात है कि वर्तमान 'णमोकार मंत्र' क्रमशः एक पदी, द्विपदी, त्रिपदी के माध्यम से पंचपदी में विकसित हुआ है। त्रिपदी में अरिहंत, सिद्ध एवं साधुपद ही था। संभवतः अन्य परम्पराओं के प्रभाव से उत्तरवर्ती काल में इसमें आचार्य और उपाध्याय पद जुड़े हैं। ये साधु के ही गुणकृत कोटि के भेद हैं।

प्रारंभ में मूलगुण शब्द से साधुओं के ही मूलगुणों का अर्थ लिया जाता था। श्रावकों के मूलगुणों की धारणा का विकास तो उत्तरवर्ती है। साधुओं के मूलगुणों की संख्या १८, २५, २७, २८ एवं ३६ के बीच पाई गई है जो समवाओं से लेकर अनगार-धर्मावृत्त के समय के बीच है।

२. श्रावक के आठ मूल गुण : कुछ विद्वान् समंतभद्र की मूलगुणी गाथा को प्रक्षिप्त मानते हैं। फलतः उनके १२ व्रतों का विवरण तो आगमों में मिलता है, पर उनके मूलगुणों का वर्णन संभवतः दसवीं सदी से ही प्रारंभ हुआ है। इनमें भी आशाधर ने ३ परम्परायें बताई हैं। इनमें परिवर्धन एवं विस्तारण-दोनों प्रक्रियायें समाहित हुई हैं।

३. साधुओं के स्वाध्याय का समय : यह एक बार में ४ घड़ी से लेकर ११ घड़ी तक का होता है।

४. लौकिक विधि की प्रमाणता : जैन इतिहास के विकट क्षणों में जिनसेन और सोमदेव ने जैनो के परिरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। हमने उनके

'सर्वमेवहि जैनानां, प्रमाणं लौकिकी विधिः। यत्र सम्यवत्त्वहानिर्न, यत्र न व्रतदूषणं॥

के श्लोकगत उपदेश को स्वीकृत किया। फलस्वरूप अनेक नई परंपरायें जैनो में आईं। इनमें से कुछ पर आज प्रश्न किये जा रहे हैं। इनका उद्भव शास्त्रीय या आगमिक आधार पर न भी हुआ तो, पर ऐतिहासिक कारणों से तो हुआ ही है। इनसे निवर्तन

पाना कठिन ही प्रतीत होता है। भट्टारक प्रथा, यक्ष-यक्षी-पूजन, पंचामृताभिषेक, दिगम्बर साध्वियों का पद आदि परम्परायें इसी कोटि में आती हैं। **हरिवंशपुराण** आदि में इनका उल्लेख और वर्णन है।

५. सामायिक और प्रतिक्रमण : हमने इन प्रक्रियाओं में मूल प्राकृत पाठों के साथ उत्तरवर्ती अनेक संस्कृत के पाठ भी स्वीकार किये।

६. भट्टारकों की परम्परा : हमने निग्रंथ संस्था के अंतर्गत अपने संरक्षण और धर्म परिक्षण के लिये तेरापंथ और बीसपंथ की परम्परा स्वीकृत की और शिथिलाचार के साथ मुनि-परम्परा को भट्टारक के रूप में परिवर्तित होता हुआ देखा है। उनकी कोटि पर आज किंचित् प्रश्न उभरे जा रहे हैं। यह ऐतिहासिक युगों की विवशताओं में हमें स्वीकृत करना पड़ा। उनका उल्लेख आगमों में नहीं है, पर इनके अस्तित्व और प्रतिष्ठा से कौन अपरिचित है?

७. बाइस अभक्ष्यों की धारणा : आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया है कि भोगभूमियों एवं कुलकरों के युग में लोग प्राकृतिक कंद, मूल, पुष्प और फल ही खाते थे। क्रमशः अग्नि और कृषि आई। इससे विभिन्न प्रकार के बीजान्न एवं वनस्पति पकाकर खाये जाने लगे। उत्तरवर्ती काल में जब हिंसा-अहिंसा का विवेक विकसित हुआ, तो **आचारांग**, **मूलाचार** तथा बाद में अनेक ग्रंथों में कुछ पदार्थों की अभक्ष्यता निरूपित की गई। इन अभक्ष्यों की संख्या का उल्लेख दसवीं सदी तक के ग्रंथों में नहीं मिलता। **आचारांग** - २ पृष्ठ १२ (**आचारांगचूर्णि**) में अभक्ष्यता के ग्यारह आधार बताये हैं जिनसे हिंसा-अहिंसा विवेक की तीक्ष्णता प्रकट होती है। यह कितनी व्यावहारिक है, यह बात अलग है। इसके विपर्यास, **रत्नकरंड-श्रावकाचार** आदि दिगम्बर ग्रंथों में यह अधिक व्यापक है। इनमें (१) त्रस जीव घात (२) प्रमादोत्पादकता (३) स्वास्थ्य हानि (४) लोक विरुद्धता (५) अल्पफल बहु विघात एवं (६) अपक्वता के आधार बताये गये हैं। **भगवती १८.१०** में बताया है कि सरसों, उड़द और कुलत्थ (और अन्य अनेक वनस्पति भी) तभी भक्ष्य होते हैं जब वे शस्त्र-परिणत, एषणीय, याचित (साधु के लिये) और लब्ध हों। वहां वनस्पतियों के लिये शस्त्र-परिणमन की विधियां भी बताई हैं। गृहस्थ भी प्रायः इनको इसी रूप में खाते होंगे। इससे लगता है कि किसी समय अग्नि-पक्वता मात्र भक्ष्यता का आधार नहीं रही होगी। इस प्रकार अभक्ष्यता की धारणा तो प्राचीन है, पर उनकी निश्चित संख्या की धारणा उत्तरवर्ती है। अतः यह स्पष्ट है कि अभक्ष्य पदार्थों की कोटि और संख्या समय-समय पर परिवर्तित होती रही है। इसी प्रकार भक्ष्य पदार्थों की कोटियां ९-१८ के बीच परिवर्तित हुई हैं।

८. पुरुषों और महिलाओं की कलायें : यद्यपि पुरुषों की ७२ कलायें मानी जाती हैं, पर इनके नाम भिन्न-भिन्न ग्रंथों में पृथक-पृथक हैं। ये समयानुसार

परिवर्तित होते रहे हैं। उपलब्ध कलाओं को संयुक्त करने पर उनकी संख्या १४० तक हो जाती है। इसी प्रकार, स्त्रियों की ६४ कलायें भी लगभग १४० हो जाती हैं।

९. रोगों की संख्या : आगमों में सामान्यतः १६ रोग बताये गये हैं पर उन्हें विभिन्न स्रोतों से संकलित करने पर ६४ हो जाते हैं। रोग तो सामान्यतः उल्लंघित आचार माने जाने चाहिये।

इन विवरणों में हमें भौतिक जगत् संबंधी मान्यताओं पर विचार नहीं कर रहे हैं। उनमें भी परिवर्तनों की संख्या पर्याप्त है।

उपरोक्त सैद्धांतिक और आचारगत परिवर्तन प्रायः शास्त्रीय हैं। मध्ययुग और नये युग में भी परिवर्तन की परम्परा वर्धमान रही है। यह अनेक शास्त्रीय एवं सामयिक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करती है। उदाहरणार्थ :

अ. लोकाशाह और तारणस्वामी ने श्वेतांबरों और दिगंबरों में शास्त्र-पूजक एवं मूर्तिपूजा विरोधी सम्प्रदायों की स्थापना की। इनका आधार शास्त्र के अतिरिक्त मंदिर-दुर्वावस्था भी रहा है। ये पंथ आज पर्याप्त प्रगतिशील हैं।

ब. अमर मुनि जी ने साधुओं के लिये वाहन-प्रयोग, शस्त्र परिणत भक्ष्यता को पुनः प्रतिष्ठित किया। उन्होंने स्वचालित शौचालयों के उपयोग की भी स्वीकृति दी। (यद्यपि ये विषय आज भी विचार श्रेणी में हैं।)

स. आचार्य तुलसी ने जैनधर्म के विश्वीय सम्प्रसारण के लिये समण-समणी की परम्परा स्थापित की जो गृहस्थ और साधु की कोटियों के मध्यवर्ती है। इसके सदस्य विदेश जाकर धर्म प्रचार भी अनेक वर्षों से कर रहे हैं।

द. आचार्य विद्यानंद ने जीवंत-स्वामीकी प्रतिमा की पूज्यता बताई और जैनों के हिंदूकरण का संकेत दिया।

य. अधिकांश पश्चिमी विचारक भारतीय धर्मों को नकारात्मक और निराशावादी कहते हैं। इस धारणा को निर्बल करने के लिये स्वामी सत्यभक्त ने धर्म की परिभाषा को नया रूप दिया है। उनके अनुसार, धर्म से संसार में सुख का संवर्धन होता है। दुःख निवृत्ति तो परोक्ष फल है। वैसे भी धर्म की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है। प्रथम युग में, यह 'धम्म हि हितयं पयाणं' के रूप में प्रजामुखी थी, बाद में, यह 'जीवरक्षण' के रूप में आई और फिर 'आत्म-विशुद्धि साधन' के रूप में व्यक्तिनिष्ठ हो गई। पर अब यह 'क्षेम सर्वप्रजानां' के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। सत्यभक्त के समान, महात्मा भगवानदीन ने भी श्रावकों की प्रतिमाओं को नया नाम और रूप देकर उन्हें सकारात्मक तथा समाजमुखी बनाने की प्रक्रिया बतायी है।

र. पण्डित फूलचन्द्र शास्त्री जैसे विद्वानों ने हरिजनों को मनुष्य मानकर उनके मंदिर प्रवेश का समर्थन किया। उस समय उनका विरोध भी हुआ था, पर यह प्रश्न अब गौण सा बन गया है।

ल. प्रत्येक धर्म-तंत्र में प्रायः तैंतीस प्रतिशत भौतिक जगत् का वर्णन रहता है। इस वर्णन की शब्दावली विशिष्ट होती है। इसके कारण ही, देश विदेश में इसका अध्ययन नहीं हो सका। इस सदी के अनेक विद्वानों ने शास्त्रीय शब्दावली में प्रस्तुत विचारों की आधुनिक मान्यताओं से अंशतः या पूर्णतः समकक्षता स्थापित कर जैन विवरणों की तथा उसके अनेक आचार-विचारों की वैज्ञानिकता प्रतिष्ठित कर उसके संवर्धन में योगदान किया है। इससे पश्चिमी जगत् जैन धारणाओं के मंथन की ओर आकृष्ट हुआ है।

इस तरह भाव (समय-आधारित पर्यायें) की दृष्टि से भी भौतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं में बदलाव या परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों के विषय में सभी विद्वान् अवगत हैं। आज भी यह परम्परा अविरत चल रही है। इसके बावजूद भी, जो विवेकी जन विज्ञान को उसकी निरन्तर परिवर्तनशीलता के कारण धर्म की तुलना में सम्मान नहीं देते और धार्मिक सिद्धांतों को युगानुकूल परिवर्तित न होने का मत व्यक्त करते हैं, उन्हें अपने मतों की पुनः समीक्षा करनी चाहिये।

आगमिक या आगम-कल्पिक मान्यताओं के इन परिवर्तनों तथा समयानुकूल नई स्थापनाओं के आधार पर उनकी प्रामाणिकता विशिष्ट ऐतिहासिक काल के आधार पर मानी जानी चाहिये, त्रैकालिक आधार पर नहीं। यह सत्य है कि आगमों के अनेक विवरण विशेषतः अमूर्त जगत् के और अनेक भौतिक जगत् के भी आज भी अनुकरणीय होंगे, शायद त्रैकालिक सत्य भी हों। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि ऐसे ही सिद्धांत हैं। हां, भौतिक विवरणों पर परन्वतुष्टय से विचार अपेक्षित है। विचारकों ने यह माना है कि जो सिद्धांत या मान्यतायें युगानुरूप नहीं होती, वे जीवन्त नहीं बनी रह पातीं। फलतः प्राचीन शास्त्रीय मान्यताओं के युगानुकूलन की प्रक्रिया अविरत चलनी चाहिये। यही वैज्ञानिकता की कसौटी है, जीवंतता की निकष है और धर्म के सुख-संवर्धक रूप की सक्रियतः प्रेरक है। यह प्रक्रिया ही पूर्वोक्त समस्याओं के निराकरण में हमारी सहायक होगी।



प्राचीनतम एक दुर्लभ जैन पाण्डुलिपि

प्राचार्य कुन्दन लाल जैन*

मैंने दिल्ली के भण्डारों में स्थित हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का विस्तृत-सूचीकरण आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक तकनीक पर किया है जिसके दिल्ली जिनग्रन्थ रत्नावली तथा दिल्ली जिनग्रन्थ रत्नाकर के नाम से दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अभी छह भाग छपने को तैयार पड़े हैं पर न तो किसी व्यक्ति विशेष को अथवा न ही किसी संस्था विशेष को इनके प्रकाशन की चिन्ता है। शोधार्थियों एवं मूल ग्रंथ के संपादक को इन सूचियों (Catalogues) की नितान्त आवश्यकता रहती है। मैंने अपने ग्रंथ में (Cross reference) भी दिया है जिससे शोधार्थी को उस प्रति का सन्दर्भ अन्य ग्रंथों में कहां-कहां विद्यमान है, ज्ञात हो जाता है। इस से उनको संपादन में श्रम तथा समय की बचत होगी।

जैसलमेर, जोधपुर, पाटन आदि श्वेतांबर ग्रन्थ भंडारों की व्यवस्था बड़ी सराहनीय और सुरक्षित है। यहां पाण्डुलिपियों को जरा भी नुकसान नहीं हो पाता है। स्टील की अलमारियों में कीटनाशक डिब्बे लगे हुए हैं और उन डिब्बों में पाण्डुलिपियां पूर्णतया सुरक्षित हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष के सभी विशिष्ट भण्डारों में ऐसी ही सुरक्षा के उपाय होना चाहिए। भले ही यह कार्य व्ययपूर्ण है पर पूर्वजों से प्राप्त अमूल्य सांस्कृतिक निधियां तो युग-युगों तक बच सकेंगी। मुनि जिनविजय जी तथा पुण्यविजय जी जैसे मनीषी विद्वानों ने इस दिशा में अनथक प्रयास और परिश्रम किया है जो अति सराहनीय है।

इसी संदर्भ में मुझे ज्ञात हुआ कि जैसलमेर के ग्रन्थ भण्डार में एक प्राचीनतम ताड़पत्रीय प्रति संरक्षित है जिसका नाम है **विशेषावश्यकभाष्य** और जिसके रचनाकार हैं जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण। इसके एक छन्द से मुनिश्री जिनविजय जी ने निर्णय किया था कि यह बुधवार स्वाति नक्षत्र चैत्र सुदि पूर्णिमा शक सं० ५३१ की है। उस समय राजा शीलादित्य का राज्य था। आज शक सं० १९२७ चल रहा है। इससे पता चलता है कि इसकी रचना या प्रतिलिपि लगभग १४०० वर्ष पूर्व हुई थी। इतनी प्राचीन प्रति विरली ही प्राप्त होती है। यद्यपि प्रति जीर्णशीर्ण है पर आज तो ऐसी वैज्ञानिक विधियां तैयार हो गई हैं जिनसे प्रति को पूर्ण सुरक्षित बनाया जा सकता है अतः जैसलमेर के अधिकारी उसे दुरुस्त कराकर उसकी फोटो कापी रख लें जिससे कोई भी शोधार्थी सम्पादन सरलता से कर सकता है।

* श्रुत कुटीर, ६८ विद्यासमार्ग, विद्यासनगर शाहदरा - दिल्ली - ३२

मुनि जिनविजय जी बड़े मनीषी और जैन इतिहास तथा पुरातत्त्व के अन्वेषक थे। उन्होंने सैकड़ों नये ग्रंथ खोजे तथा उनका प्रकाशन और प्रसारण कराया।

मुनिश्री ने अपने ग्रंथ *A catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts in Rajsthan Oriental Research Institute, Part II C (Jaipur Branch)* की भूमिका में कई महत्त्वपूर्ण प्राचीन पाण्डुलिपियों का उल्लेख किया है जिनमें से कातन्न स्कूल ऑफ संस्कृत व्याकरण के विशिष्ट ग्रंथ **कर्कशाम्बन्धोद्योत व बालशिक्षा** का भी उल्लेख किया है जो ठक्कुर संग्राम सिंह की कृति है। मुनिश्री ने अपनी भूमिका में और भी कई विशिष्ट पाण्डुलिपियों का उल्लेख किया है जिनमें से संभवतः कुछ प्रकाशित हो चुके हों :- जैसे

(१) मम्मट कृत **काव्यप्रकाश** पर भट्टसोमेश्वर कृत टीका यह ताड़पत्र पर लिखी गयी है तथा लिपिकाल है सन् ११५८ ई०, जो **काव्यप्रकाश** की रचना (१०५०-११०० ई० सन्) के ही समकालीन अथवा कुछ वर्ष बाद की महत्त्वपूर्ण कृति है।

(२) **चक्रपाणिविजयमहाकाव्य** - श्री लक्ष्मीधर

(३) **शब्दरत्नप्रदीप**, **कर्कशाम्बन्धोद्योत** और **बालशिक्षा**- ठक्कुर संग्रामसिंह

(४) **वृत्तजातिसमुच्चय** - विरहांक (प्राकृत संस्कृत मिश्रित) लगभग सातवीं ई० के लगभग।

(५) **कविदर्पण** में १४वीं सदी ईस्वी के मध्यकालीन इतिहास की परम्पराओं का विवेचन है।

(६) **पदार्थरत्नमंजूषा** में कृष्णभट्टकवि ने वैशेषिक न्याय परंपरा का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है।

(७) **त्रिपुराभारतीलघुस्तव** - लघुआचार्य द्वारा त्रिपुरा देवी की यह भक्ति पूर्ण रचना है।

(८) **शब्दरत्नप्रदीपिका** -

(९) **वासवदत्ता**- इसमें सुबन्धु ने संस्कृत गद्य में प्रेम कथा का वर्णन किया है।

शास्त्रों में नव निधियों, ऋद्धियों और सिद्धियों का वर्णन मिलता है पर यहां हमारा उन निधियों, सिद्धियों से कोई तात्पर्य नहीं है अपितु मानवीय दैनिक जीवन से संबंधित निधियों से है जैसे सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात आदि जिनका हम शरीर शोभा के लिए उपभोग करते हैं और दूसरी निधियां वे हैं जो हमारे पूर्वज हमारे लिए

सांस्कृतिक विरासत के रूप में हमें छोड़ गये हैं जैसे पुरातात्विक सामग्री, पाण्डुलिपियां, मूर्तियां, अयागपट्ट, स्तूप, शिलालेख, मूर्तिलेख, यंत्रलेख तथा और बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री, जो श्रमण संस्कृति के उत्थान और विकास में सहायक सिद्ध हुई हैं। यदि वे सारी सामग्रियां उपलब्ध रही होतीं तो जैन धर्म से सम्बद्ध पुरातात्विक साक्ष्यों की संख्या संसार में सबसे अधिक होती, पर हमारा दुर्भाग्य कि वह सब हम बचा नहीं सके।

हमारा प्रमाद और अज्ञान हमें अपने सांस्कृतिक धरोहर को बचाने में सदैव बाधक रहा है। पाण्डुलिपियों के संबंध में हम इतने अधिक प्रमादी और अज्ञानी रहे कि हम उन्हें चूहों, दीमक, सीलन आदि से नहीं बचा सके और उनमें से अधिकांश सदा-सदा के लिए नष्ट हो गईं अब उन्हें पुनः तैयार करना सूर्य को दीपक दिखाना मात्र रह गया है। साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण एक विद्वान् ने कहा था कि यदि किसी धर्म को नष्ट करना है तो सबसे पहले उसके साहित्य को नष्ट कर दो और उसी दुर्भावना का प्रभाव हुआ कि दक्षिण में ताड़पत्र के बहुमूल्य ग्रंथ इतनी अधिक मात्रा में जलाये गये थे कि उनकी आग छह माह तक नहीं बुझी थी। कल्पना करें उन जलाये हुए ग्रंथों में कितने ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रहे होंगे कि जिनके लिए आज हम भटक रहे हैं। हमारी उपेक्षा एवं अज्ञानता का परिणाम यह हुआ कि हजारों ग्रंथ चूहे और दीमकें चट कर गईं और हम हाथ मलते रह गये और उन अवशेषों को या तो नदियों में बहा दिया या यज्ञ में हवन सामग्री के रूप में समर्पित कर दिया।

पुरातत्त्व की दृष्टि से मथुरा का कंकाल टीला प्रसिद्ध है जहां जैन पुरातत्त्व की बड़ी संख्या में प्राचीन सामग्री निकली पर प्राकृतिक आपदाओं से वह नष्ट-भ्रष्ट हो गई या विद्वेष भाव से नष्ट कर दी गई।^० अब तो पुरातात्विक दृष्टि से बहुमूल्य मूर्तियां, विदेशों में लुके-छिपे बिक कर पहुंच रही हैं। शासन ने इन सबके पंजीकरण का नियम बना दिया है पर कोई भी इस तरफ ध्यान नहीं देता और प्रतिमाओं की चोरी जारी है। पंजीकरण के अभाव में पुलिस भी कुछ नहीं कर पाती है। अतः हमें अपनी मूर्तियों एवं पाण्डुलिपियों की सुरक्षा तथा उनका प्रकाशन करना चाहिए। व्यर्थ के प्रदर्शनकारी कार्यों में समाज के धन का अपव्यय नहीं होना चाहिए तथा भंडारों का सूचीकरण कर प्राचीनतम प्रतियां ढूंढनी चाहिए।



^०यहाँ से प्राप्त पुरावशेष मथुरा और लखनऊ के संग्रहालयों में संरक्षित हैं। सम्पादक

जैन कथा-साहित्य का गौरव- 'वसुदेव हिण्डी'

वेद प्रकाश गर्ग*

श्री कृष्ण के पिता वसुदेव जैन मान्यतानुसार २०वें कामदेव हैं। उनका चरित जैन-साहित्य में रोचक एवं व्यापक रूप में वर्णित है। इस प्रकार की रचनाओं में **वसुदेव हिण्डी** का अपना एक विशिष्ट स्थान है। **वसुदेवहिण्डी** का अर्थ है - वसुदेव की यात्राएँ। इस ग्रंथ में कृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण (हिण्डन) की रोचक एवं कौतुक-पूर्ण कथाएँ दी गई हैं। अपनी यात्राओं में वसुदेव को जो अनुभव प्राप्त हुए उनका समावेश इस कथा ग्रंथ में है। यह वृत्तान्त साहसिक एवं श्रृंगारी उपाख्यानों से भरा है। वास्तव में इसमें काम-कथाओं पर आधारित धर्म-कथाएँ हैं। इस प्रकार यह प्राचीन जैन महाराष्ट्री में लिखा हुआ एक महत्वपूर्ण कथानक है। बृहत्कथा कल्प इस **वसुदेवहिण्डी** के चार प्रमुख अधिकारों - 'पीठिका', 'मुख' 'प्रतिमुख' और 'शरीर' (अपूर्ण) में वसुदेव^१ और उनके पूर्वजों-वंशजों की कथा परिगुम्फित है। "वसुदेव ने किस प्रकार परलोक में फल प्राप्त किया? राजा श्रेणिक के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर ने उनसे कहा कि आप पहले "पीठिका" सुनें, क्यों कि यह वसुदेव के बहुत महान् इतिहास के प्रासाद की पीठ (आधारभूमि) है" और इसी क्रम में लगातार भगवान् ने 'मुख' और 'प्रतिमुख' नामक अधिकारों द्वारा कथा को उद्भाविता किया है।

ग्रंथ-कर्ता ने ग्रंथ की प्रस्तावना में कहा है - 'गुरु परम्परा से आगत वसुदेव चरिय नामक संग्रह का मैं वर्णन करूँगा।' और रचनाकार ने प्रथमानुयोग के तीर्थकर-चक्रवर्ती एवं दशार-वंश के राजाओं के वर्णन का अनुसरण करके 'वसुदेव चरित' का उपदेश किया है। इस प्रकार **वसुदेवहिण्डी** के नायक कृष्ण-पिता वसुदेव हैं। रचयिता ने उसे जैन-कथा का रूप प्रदान किया है।

श्रमण-परम्परा की इस महान् कथा कृति की रचना आचार्य संघदास गणि ने की थी। ग्रंथ-कर्ता संघदास गणि वाचक के संबंध में कोई सुनिश्चित जानकारी प्राप्त नहीं होती, किंतु यह कथा आगमेतर साहित्य में प्राचीनतम मानी जाती है और **आवश्यकचूर्ण** के कर्ता जिनदास गणि ने इसका उपयोग किया है। **निशीथचूर्ण** में भी इसका उल्लेख है तथा जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की कृति **विशेषणवती** में भी इसका निर्देश है। अतः इन उल्लेखों से अनुमान किया जा सकता है कि संभवतः इसकी रचना ईसा की तृतीय-चतुर्थ शती में हुई थी। इसकी भाषा भी प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत

* १४, खटीकान, मुजप्फरनगर, उ०प्र०

है, जिसकी तुलना चूर्णि ग्रन्थों से की जा सकती है। इसमें जैन महाराष्ट्री का प्राचीनतम रूप विद्यमान होने से रचना काल संबंधी उक्त अनुमान संभव प्रतीत होता है। यह कथा-ग्रंथ गद्यात्मक समासान्त पदावली से युक्त है। बीच-बीच में पद्य भी हैं। इसकी भाषा सरल, स्वाभाविक एवं प्रसाद-गुण सम्पन्न है। यह रचना वर्णनात्मक कथा होते हुए भी काव्यत्व की गरिमा से ओत-प्रोत है।

इस ग्रंथ में ३८ लम्भक हैं और उसका परिमाण लगभग ११ हजार श्लोकों का है। दुर्भाग्य से यह कृति अपूर्ण है।^२ इसके मध्य के दो लम्भक (सं० १९ व २०) एवं अंतिम उपसंहार अप्राप्य है तथा बीच-बीच में भी कुछ अंश त्रुटित हैं। चौथा अधिकार 'शरीर' भी अपूर्ण है। **वसुदेवहिण्डी** का संपादन प्राकृत के प्रकाण्ड विद्वान् मुनि चतुर विजय एवं पुण्यविजय जी ने किया। इसका प्रथम संस्करण सन् १९३०-३१ ई० में श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर से दो भागों में प्रकाशित हुआ। डॉ० भोगीलाल जयसिंह सांडेसरा द्वारा किया गया इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद भी उक्त 'संस्था' से ही सन् १९४६ में प्रकाशित हुआ।

आचार्य संघदास गणि की यह महाकृति **वसुदेवहिण्डी** वास्तव में एक प्रकार से गुणाढ्य की पैशाची प्राकृत में रचित **बृहत्कथा** (बड्ड कहा) का ही जैन-रूपानन्तर है। इसकी पुष्टि **कथासरित्सागर**, **बृहत्कथामंजरी**, **बृहत्कथाश्लोकसंग्रह** तथा संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में रचित अन्य जैन कथात्मक ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से होती है। **बृहत्कथा** में नरवाहनदत्त की कथा दी गई है और इसमें वसुदेव का चरित वर्णित है। **बृहत्कथा** की भाँति इसमें भी शृंगार कथा की मुख्यता है, किंतु रचयिता ने जैन धर्मी होने से इसे वैराग्यपरक उपदेशात्मक धर्मकथा के रूप में परिणत कर दिया है। अर्थात् इस ग्रन्थ को काम कथाओं पर आधृत धर्मकथा की संज्ञा दे सकते हैं।^३ कथानकों की शैली सरस एवं सरल है। **बृहत्कथा** पर आधृत होते हुए भी यह ग्रन्थ अपना निजी मौलिक वैशिष्ट्य रखता है। जैनैतर रचनाकारों के मध्य भी यह महत्कथा ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय रहा है।

वस्तुतः **वसुदेवहिण्डी** की कथाएं (परिच्छेद) उप कथाओं के द्वारा परस्पर अनुस्यूत हैं। मूल कथा के भीतर कथाओं की परम्परा चलती है, जिनमें धर्माचरण पर बल देने के लिए मुनिजनों द्वारा उद्धाटित पूर्वभव-वृत्त, महाव्रत आदि अन्यान्य विचार भावों के साथ ही चक्रवर्तियों एवं तीर्थंकरों की जीवनियां तथा जैन रामायण आदि धार्मिक विषय अनुगुम्फित हैं। अतः जैनागमेतर साहित्य में यह ग्रन्थ उत्तरकालीन जैन लेखकों के लिए एक आदर्श बन गया है और यही कारण है कि उत्तरकालीन अनेक काव्य-कथाओं का यह उपजीव्य ग्रन्थ है। इससे इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि जैन-कथा साहित्य के इतिहास और उसके विकास में **वसुदेवहिण्डी** ने एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

यद्यपि **वसुदेवहिण्डी** के भावनगर वाले संस्करण का संपादन बारह प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर किया गया है, तथापि इस में अशुद्धियाँ एवं त्रुटियाँ रह गई हैं। साथ ही इसमें भाषा संबंधी प्रयोग भी विलक्षण हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते। अतएव अर्थ के लगाने में कठिनाई होती है अर्थात् यह ग्रन्थ एक प्रकार से शुद्ध रूप में प्रस्तुत न किया जा सका, जिससे किसी टीका-टिप्पणी की सहायता के बिना विद्वान् पाठकों को इसके पठन-पाठन में कठिनाई का अनुभव होने से इसके पूर्ण रसास्वादन में बाधा उपस्थित होती रही।

उपर्युक्त कारणों से आकृष्ट होकर प्राकृत-भाषा एवं साहित्य के अनन्य विद्वान् डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव जी ने इस अभाव की पूर्ति-हेतु जैन-कथा-साहित्य के इस अतिविशिष्ट ग्रन्थ का अत्यधिक परिश्रम से पुनः संपादन किया और मूल पाठ के साथ हिन्दी अनुवाद देते हुए इसका एक अभिनव संस्करण प्रस्तुत किया। श्रीरंजन सूरिदेव के इस महत्कार्य से साहित्य जगत् निश्चय ही उपकृत हुआ है। इस साहित्योपकार हेतु उन्हें अनेकशः साधुवाद। उनके इस दुस्साध्य सारस्वत अनुष्ठान हेतु उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। **वसुदेवहिण्डी** का यह नवीन संस्करण (मूल-सह हिन्दी अनुवाद) पं० राम प्रताप शास्त्री चेरिटेबुल ट्रस्ट, ब्यावर (राजस्थान) से प्रकाशित हुआ है। इसी कथा-ग्रन्थ पर श्री रंजन जी ने पीएच०डी० की उपाधि प्राप्त की है। यह शोध-प्रबंध **वसुदेवहिण्डी : भारतीय जीवन और संस्कृति की बृहत्कथा** नाम से प्राकृत जैन शोध-संस्थान, वैशाली से प्रकाशित है।

सन्दर्भ :

१. **वसुदेवहिण्डी** के अनुसार वसुदेव अन्धक वृष्णि के सबसे छोटे पुत्र थे।
२. धर्मदास गणि ने **वसुदेवहिण्डी** में सौ लम्बकों का अनुमान कर अपने ‘मज्झिमखंड’ से इसकी पूर्ति की है। यह **वसुदेवहिण्डी** का दूसरा खंड माना जाता है। इसमें ७१ लम्बक हैं, जिनके लेखक ने अन्त में न रखकर बीच में १८वें लम्बक से जोड़ा है। इसका श्लोक प्रमाण १७ हजार है। धर्मदासगणि का समय अनिश्चित है। इस प्रकार **वसुदेवहिण्डी** के दो खंड माने जाते हैं।
३. यह जैन लेखकों का अद्भुत साहित्य एवं भावनात्मक कौशल है कि वे एक जीवन्त प्रेम कथा को ऐसा मोड़ दे देते हैं और थोड़े से हेर-फेर से ही उसे एक वैराग्यपरक धर्म कथा में बदल देते हैं। उनके विचार में काम कथा के आवरण में धर्म कथा को सन्निहित कर प्रस्तुत करना चाहिए तभी वह प्रभावात्मक रहती है और जनमानस को धर्म-मार्ग पर लाने में सार्थक सिद्ध होती है।



बिहार गाँव की मृण्मुहरें

डॉ० अशोक प्रियदर्शी*

बिहार गाँव फर्रुखाबाद जिले की सदर तहसीलान्तर्गत बौद्ध महातीर्थ संकिसा के पूर्व दिशा में लगभग १० कि०मी० दूरी पर २७.१८° उत्तरी अक्षांश तथा ७९.२०° पूर्वी देशान्तर पर उत्तरी रेलवे के पखना रेलवे स्टेशन से लगभग १.५ कि०मी० दूर दक्षिण-पूर्व में स्थित है।

बिभु युआन-चुआङ्ग ने संकिसा राजधानी से २० ली पूर्व में एक शानदार महाविहार के प्रांगण में जिन देवावरोहण कलाकृतियों का उल्लेख किया है,^१ उनके भग्नावशेषों की पहचान सर कनिंघम ने वर्तमान बिहार गाँव/पखना-बिहार के ऐतिहासिक टीले के रूप में की है।^२ प्राचीन काल में बिहार गाँव का महाविहार अवश्य ही संकिसा महातीर्थ का एक महत्वपूर्ण अंग रहा होगा। इसी महाविहार के कारण यह स्थल प्रारम्भ में विहार और फिर कालान्तर में पखना-बिहार के रूप में जाना गया। मेरे विचार में इस नगर को पखना-बिहार के बजाय संकिसा-बिहार कहना अधिक तर्क संगत है। इस सन्दर्भ में इसी प्रकार का विचार कनिंघम महोदय का भी है।^३ कनिंघम ने प्राचीन महाविहार एवं स्तूप के भग्नावशेषों से उच्च नक्काशी युक्त अथवा सांचे में ढली हुई ईंटों, सभी प्रकार के पत्थर के टुकड़ों, वास्तुकला के प्रस्तर-खण्डों, मूर्तियों के टुकड़ों के अलावा रोचकपूर्ण पकी हुई मृण्मुहरें भी प्राप्त कीं। यहीं से प्राप्त मृण्मुहरों में से कुछ पर बुद्धाकृति तो अनेक पर स्तूप के साथ-साथ प्रायः श्रमण अश्वजित द्वारा सारिपुत्र को धम्म के सार रूप में कही गयी प्रसिद्ध बौद्ध गाथा - “ये धम्मा हेतुप्पभवा, हेतु तेसं तथागतो आह। तेसं चयो निरोधो एवं वादी महासमनो।” (अर्थात् जितने भी धर्म हैं, वे सब कारण (हेतु) से उत्पन्न होते हैं, उनका हेतु (कारण) तथागत बतलाते हैं और उनके निरोध (विनाश) का मार्ग बतलाते हैं। महाश्रमण (बुद्ध) इसी सिद्धान्त को मानते हैं।) पांच, छः अथवा सात पंक्तियों में उत्कीर्ण है।^४ ये सभी मुहरें कुषाण काल से लेकर १०वीं एवं ११वीं सदी की हैं।^५ कालांतर में डॉ० आर०के० पॉल ने बिहार गाँव के अपने सर्वेक्षण के दौरान यहाँ से ११ पकी हुई मृण्मुहरें प्राप्त कीं जिनमें से १० पर तो ५वीं सदी से ७वीं सदी की गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में उपर्युक्त प्रसिद्ध बौद्ध गाथा पूर्ण

* ‘चामेलिका’, विवेक विहार, मैनपुरी - २०५ ००१

रूप से अंकित है, जबकि एक मात्र शेष ११वीं मुर पर भी ब्राह्मी लिपि में एक बौद्धअभिलेख नौ पंक्तियों में अभिलिखित है।^६

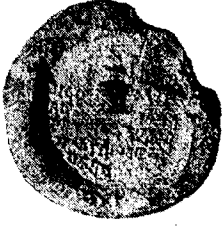
मैंने जब अक्टूबर, १९९९ में अपने अग्रज डॉ० राहुलप्रिय रक्षपाल सिंह के साथ बिहार गाँव की शोधपरक यात्रा की तो यहाँ मुझे कुछ विशिष्ट मृण्मुरें देखने को मिलीं। इनमें से भी अधिकांश पर उपर्युक्त बौद्धगाथा ५वीं से ७वीं सदी की गुप्तकालीन ब्राह्मीलिपि में अभिलिखित है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इन्हीं विशिष्ट मृण्मुरों का उल्लेख करना है।

(१) एक लाल रंग एवं खण्डित किनारी वाली गोलाकार मृण्मुर (चित्र-१) के आधे ऊपरी भाग के मध्य में एक सुन्दर एवं स्पष्ट स्तूप की आकृति उभरी हुई है। स्तूप की हर्मिका में लगे दोनों छत्र एवं दण्ड पूर्णतः स्पष्ट हैं। स्तूप के निचले भाग में प्रसिद्ध बौद्ध गाथा - “ये धर्मा हेतुप्पभवा.....।” पांच पंक्तियों में अंकित है, जिसके अक्षर कुछ घिस से गये हैं। पृष्ठ भाग सादा एवं सपाट है।

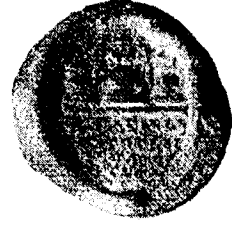
(२) बादामी रंग की एक गोलाकार मृण्मुर (चित्र-२) के आधे ऊपरी भाग में तीन स्तूपों की क्षतिग्रस्त आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इनमें मध्य का स्तूप अगल-बगल के दोनों स्तूपों की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा है और उसकी हर्मिका के दोनों छत्र एवं दण्ड भी स्पष्ट हैं। नीचे के भाग में प्रसिद्ध बौद्धगाथा - “ये धर्मा हेतुप्पभवा.....।” पांच पंक्तियों में अंकित है, जिसके प्रारम्भ के लगभग आधे अक्षर पूर्णतः नष्ट हो गये हैं। इसका भी पृष्ठ भाग सादा और सपाट है।

(३) एक कम पकी हुई हल्के लाल रंग की मृण्मुर (चित्र-३) के लगभग मध्य में एक बौद्ध स्तूप की आकृति उभरी हुई है। इसकी हर्मिका में चार छत्र हैं, जो ऊपर की ओर क्रमशः छोटे होते गये हैं। शेष सम्पूर्ण भाग में प्रसिद्ध बौद्ध गाथा- “ये धर्मा हेतुप्पभवा.....।” छः पंक्तियों में अंकित है। इसका भी पृष्ठ भाग सादा और सपाट है। इस प्रकार की एक मृण्मुर सर कनिंघम को भी यहाँ से प्राप्त हुई थी, लेकिन उसका रंग काला तथा अभिलेख छः के बजाय सात पंक्तियों में था।

(४) बादामी रंग की एक गोलाकार मृण्मुर (चित्र-४) के ऊपर की ओर लगभग १/३ भाग में एक सुन्दर स्तूप अंकित है। इसकी हर्मिका में केवल एक ही छत्र है तथा उसके ऊपर दण्ड का कुछ भाग निकला हुआ है। स्तूप के अगल-बगल का भाग संभवतः कमल-पुष्प की पंखुड़ियों से अलंकृत है। नीचे के भाग में बौद्ध गाथा- “ये धर्मा हेतुप्पभवा.....।” पांच पंक्तियों में अंकित है, जिसके अक्षर कुछ घिस से गये हैं। पृष्ठ भाग सादा एवं सपाट है।



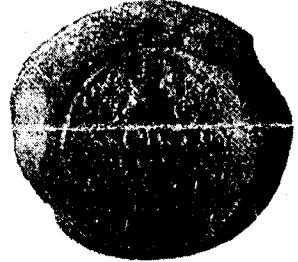
चित्र -१



चित्र -२



चित्र -३



चित्र -४



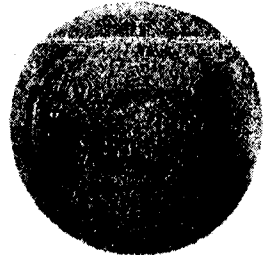
चित्र -५



चित्र -६



चित्र -७



चित्र -८

डॉ० अशोक प्रियदर्शी को बिहार गाँव से प्राप्त मृण्मुहरे

(५) ठीक इसी प्रकार की एक दूसरी मृण्मुहर (चित्र-५) है, लेकिन कई जगह से इसकी किनारी एवं बौद्धगाथा के कुछ अक्षर पूर्णतः नष्ट हो गये हैं, जबकि इस पर उत्कीर्ण स्तूप पूर्णतः स्पष्ट है। इसका भी पृष्ठ भाग सादा एवं सपाट है।

(६) बादामी रंग की एक गोलाकार मृण्मुहर (चित्र-६) के ऊपरी अर्द्धभाग में भगवान् बुद्ध उपदेश मुद्रा में कमल-पुष्प पर पद्मासन लगाये हुये बैठे हैं, संभवतः उनके दोनों ओर पार्श्व में कमल की लतायें हैं। भगवान् के सिर के चारों ओर आभा-मण्डल सुसज्जित है। आसन के नीचे सीधी दो लकीरें हैं। लकीरों के नीचे उत्तर गुप्तकालीन लिपि तथा अलंकृत शैली में प्रसिद्ध बौद्ध गाथा तीन पंक्तियों में अस्पष्ट रूप में अभिलिखित है।

ठीक इसी प्रकार की एक मुहर कनिंघम को भी यहाँ से प्राप्त हुई थी, लेकिन उसका रंग बादामी न होकर काला था।^७ इससे मिलती-जुलती एक मृण्मुहर डॉ० पॉल को भी यहाँ से प्राप्त हुई थी, लेकिन उसमें भगवान् बुद्ध अपने दायें हाथ में भिक्षा-पात्र पकड़े हुए हैं।^८

(७) पकी मिट्टी की विविध रंग की अनेक ऐसी भी मुहरें देखने में आयीं, जिन पर ५वीं सदी से ७वीं सदी की ब्राह्मी लिपि में पांच, छः अथवा सात पंक्तियों में उपर्युक्त बौद्धगाथा पूर्ण रूप से सुव्यवस्थित है (चित्र-७)। सभी मृण्मुहरों का पृष्ठ भाग सादा एवं सपाट है।

(८) मुझे यहाँ अतिविशिष्ट एक गोलाकार मृण्मुहर (चित्र-८) देखने को मिली, जिसके मध्य में स्वयं भगवान् बुद्ध भूमि स्पर्श मुद्रा में एक छत्र युक्त स्तूप में बैठे हुए दर्शाये गये हैं। स्तूप के मण्डप के दोनों ओर उनके दो अनुचर भी खड़े हुए हैं, जबकि स्तूप के ऊपर दोनों ओर दो गन्धर्व भी माला लिए हुए दर्शाये गये हैं। इन अनुचरों की पहचान संकिसा में देवावरोहण के समय तथागत बुद्ध के दायें-बायें सेवित ब्रह्मा एवं शक्र (इन्द्र) नामक देवगणों से की जा सकती है। बुद्धाकृति के ठीक नीचे दो पंक्तियों में प्रसिद्ध बौद्ध गाथा - “ये धर्मा हेतुप्पभवा.....।” आदि उत्कीर्ण है। मुहर का शेष भाग फूल-पत्तियों से सुसज्जित है। मुहर का सम्पूर्ण अंकन छोटी-छोटी बुंदकियों के इकहरे वृत्त के अन्दर शोभायमान है। वास्तव में यह मुहर मध्यकालीन कला की सुन्दर स्मृति का स्मरण कराती है। ठीक इसी प्रकार की एक मृण्मुहर का उल्लेख श्री एम०एम० नागर ने भी किया है।^९

अब तक बौद्ध प्रतीकों को धारण की हुई मृण्मुहरें बौद्ध धर्म की प्रसिद्धि तथा बिहार गाँव के साथ बुद्ध एवं बौद्ध धर्म के घनिष्ठ सम्बन्ध को दर्शाती हैं। बौद्ध सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि संकिसा में विहार, स्तूप एवं संधाराम आदि के बौद्धायतन विस्तृत

क्षेत्र में फैले हुए थे। वर्तमान बिहार गाँव में भी शानदार महाविहार प्रतिष्ठित था। इस महाविहार के दर्शनार्थ पधारे बौद्धों अथवा अन्य ने अपनी श्रद्धा के वशीभूत इन छोटी-छोटी भेंटों को स्तूपों तथा अन्य वस्तुओं के रूप में प्रदान किया। वर्तमान में भी देखने में आया है कि बौद्ध तीर्थ यात्री पवित्र स्थानों के भ्रमण के दौरान विभिन्न बौद्ध प्रतीकों को तीर्थ स्थलों पर चढ़ाते हैं। कनिंघम के पश्चात् यहाँ उत्खनन कार्य नहीं हुआ है, फिर भी कनिंघम के अतिरिक्त ये विशिष्ट मृण्मुहरे ग्रामीणों को या तो बरसात में अथवा जुताई आदि करते समय यहाँ से प्राप्त हुई हैं।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यदि यहाँ विधिवत एवं विस्तृत उत्खनन कार्य कराया जाये तो बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ सकता है।

सन्दर्भ :

१. थामस वाटर्स, ऑन युआन-चुआङ्स ट्रेवल्स इन इन्डिया, जिल्द-I, पृ० ३३.
२. अलेक्जेंडर कनिंघम, आ० स० इ० रि०, जिल्द-IX, पृ० ३१.
३. वही।
४. वही, पृ० ३१, ३७.
५. वही, पृ० ३५.
६. आर०के० पॉल, 'टेराकोटा सीलिंग्स फ्रॉम पखना-बिहार', पंचाल, अंक-१, पृ० १२०, १२३.
७. कनिंघम, पूर्वोक्त, जिल्द-IX, पृ० ३७.
८. आर०के० पॉल, पूर्वोक्त, पृ० १२१.
९. एम०एम० नागर, बौद्ध महातीर्थ, पृ० ६६.



कल्पप्रदीप में उल्लिखित वाराणसी के जैन एवं अन्य कतिपय तीर्थस्थल

शिव प्रसाद*

खरतरगच्छालंकार, सुलतान मुहम्मद तुगलक प्रतिबोधक, युगप्रधानाचार्य जिनप्रभसूरि द्वारा रचित **कल्पप्रदीप** अपरनाम **विविधतीर्थकल्प**^१ सम्पूर्ण जैन साहित्य में एक अद्वितीय ग्रन्थ है। यह वि०सं० १३८९/ई० सन् १३३३ में योगिनीपुरपत्तन (दिल्ली) में पूर्ण हुआ जैसा कि इसकी प्रशस्ति^२ से स्पष्ट है -

नन्दाऽनेकप शक्ति शीतगुमिते श्रीविक्रमोर्वीपते वर्षे।

भाद्रपदस्य मास्यवरजे सौम्ये दशम्यां तिथौ॥

श्रीहम्मीरमहम्मदे प्रतपति क्षामण्डलाखण्डले।

ग्रन्थोऽयं परिपूर्णतामभजत **श्रीयोगिनीपत्तने**॥

तीर्थानां तीर्थभक्तानां कीर्तनेन पवित्रितः।

कल्पप्रदीपनामाऽयं ग्रन्थो विजयतां चिरम्॥

इस ग्रन्थ में चालीस जैन तीर्थों का कल्प रूप में अलग-अलग विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन कल्पों में **वाराणसी नगरीकल्प**^३ भी एक है जिसके अन्तर्गत ग्रन्थकार ने जैन परम्परा में इस नगरी के बारे में वर्णित कथानकों की चर्चा करते हुए इस नगरी की तत्कालीन स्थिति का भी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'चतुरशीति-महातीर्थनामसंग्रहकल्प'^४ के अन्तर्गत चन्द्रप्रभ से सम्बन्धित तीर्थस्थलों की सूची में वाराणसी का भी उल्लेख है :

वाराणस्यां विश्वेश्वरमध्ये श्रीचन्द्रप्रभः

'वाराणसी नगरी कल्प' के अन्तर्गत ग्रन्थकार ने यहां सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ के जन्मभूमि होने की बात कही है। यह बात जैन परम्परा के दोनों सम्प्रदायों के प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। पार्श्वनाथ का जन्मस्थान तो उन्होंने दण्डखात नामक तालाब के निकट बतलाया है किन्तु सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी के किस क्षेत्र में हुआ था अथवा उनका जन्मस्थान मंदिर वाराणसी में कहां था। यह बात उन्होंने पूरे वर्णन में कहीं भी नहीं बतलाया है। इस आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनके (१४वीं शताब्दी) में वाराणसी नगरी में सुपार्श्वनाथ का कोई मंदिर विद्यमान नहीं था।

* प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

वाराणसी नगरी के अनेक तालाबों एवं दण्डखात नामक तालाब के निकट पार्श्वनाथ के जन्मभूमि स्थल पर निर्मित मंदिर का उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज भी इस नगरी में अनेक पक्के तालाब हैं। दण्डखात नामक तालाब के निकट जो पार्श्वनाथ का मंदिर बतलाया गया है, उसे वर्तमान भेलूपुर मुहल्ले में स्थित पार्श्वनाथ के मंदिर के स्थान पर ही मानना चाहिए। यहां मंदिर के जीर्णोद्धार हेतु करायी जा रही खुदाई में भगवान् पार्श्वनाथ की एक भग्न प्रतिमा तथा कुछ अन्य जैन प्रतिमायें एवं कलाकृतियां प्राप्त हुई हैं।^५ खुदाई के समय असावधानीवश पार्श्वनाथ की प्रतिमा खंडित हो गयी। प्राचीन भारतीय स्थापत्यकला के मर्मज्ञ और सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो० एम० ए० ढांकी ने उक्त प्रतिमा का निरीक्षण कर उसे ई० सन् की ५वीं शती का बतलाया है।^६ यहां से प्राप्त अन्य कलाकृतियों को उन्होंने ९वीं और ११वीं शताब्दी का घोषित किया है। यहां से प्राप्त उक्त पुरावशेषों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आज जहां पार्श्वनाथ का मंदिर है, उसी स्थान पर कम से कम ५वीं शताब्दी में भी रहा होगा। जहां तक दण्डखात नामक तालाब की बात है, यद्यपि यहां आज कोई भी तालाब नहीं है किन्तु भेलूपुर का निकटवर्ती वर्तमान रवीन्द्रपुरी कालोनी तालाब को पाट कर ही बनायी गयी है। यह क्षेत्र आसपास के अन्य क्षेत्रों से नीचा है और इसी लिये यहां आज भी वर्षा का जल पर्याप्त मात्रा में इकत्र होकर आवागमन को अवरुद्ध कर देता है। यदि पाट कर आवासीय क्षेत्र बनाये गये तालाब को ही दण्डखात तालाब मान लें तो जिनप्रभसूरी की बात का स्वतः समर्थन हो जाता है, क्योंकि यहां से जन्मभूमि मंदिर अत्यन्त निकट ही है।

वाराणसी नगरी की तत्कालीन दशा का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि यहां ब्राह्मण, परिव्राजक, जटाधारी, योगी, चारों दिशाओं से आये हुए लोग निवास करते हैं। ये रस विद्या, धातु विद्या, खनन विद्या, मंत्रशास्त्र, तर्कशास्त्र, निमित्तशास्त्र, नाटक, अलंकार, ज्योतिष आदि के ज्ञाता होते थे।^७ ६०० वर्ष पश्चात् आज भी उक्त वर्णन अक्षरशः सत्य दिखाई देता है।

जिनप्रभसूरी ने वाराणसी से तीन कोश (अर्थात् १८ किलोमीटर लगभग) दूर धर्मेक्षा नामक बौद्ध स्तूप और बौद्ध आयतन होने की बात कही है।^८ ग्रन्थकार का उक्त विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुस्लिम शासन के प्रारम्भिक चरण में ही जहां नालन्दा और विक्रमशिला के बौद्ध विहार नष्ट कर दिये गये वहीं चौदहवीं शताब्दी में भी एक बौद्ध केन्द्र का सुरक्षित रहना और एक इतर धर्मावलम्बी मुनि द्वारा उसका उल्लेख करना अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने धर्मेक्षा स्तूप की वाराणसी नगरी से जो दूरी बतलायी है, वह आज भी देखी जा सकती है।

आठवें तीर्थंकर भगवान् चन्द्रप्रभ के च्यवन, जन्म, दीक्षा और कैवलज्ञान ये ४ कल्याणक चन्द्रपुरी नामक नगरी में होने की बात जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों के प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होती है, परन्तु इसकी भौगोलिक स्थिति के बारे में जिनप्रभसूरी

के पूर्ववर्ती किसी भी ग्रन्थकार ने कोई चर्चा की हो, ऐसा देखने में नहीं आया है। उन्होंने इस नगरी से सम्बन्धित जैन मान्यताओं का उल्लेख करते हुए सर्वप्रथम इसके भौगोलिक स्थिति की चर्चा करते हुए इसे वाराणसी नगरी से अढाई योजन दूर स्थित बतलाया है।^{१९}

अस्याश्चसार्धयोजनद्वयात्परतश्चन्द्रावती नाम नगरी, यस्यां श्रीचन्द्रप्रभोर्गर्भावतारा-
दिकल्याणिकचतुष्टयमखिलभुवनजनष्टिकरमजनिष्ट।

मध्य युग में रची गयी विभिन्न तीर्थमालाओं में भी उक्त बात का समर्थन किया गया है।^{२०} हमारे सामने यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि वर्तमान चन्द्रावती की प्राचीनता कितनी है? क्या जैनों के अलावा किसी अन्य धार्मिक परम्परा से भी इसका सम्बन्ध रहा है? क्या यहां से कुछ पुरावशेष प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर इसी ऐतिहासिकता को स्पष्ट किया जा सके?

जहां तक इस स्थान की भौगोलिक स्थिति का प्रश्न है, यह वाराणसी से लगभग २० मील दूर उत्तर-पूर्व में गंगा के पश्चिमी तट पर एक संरक्षित एवं विशाल टीले पर स्थित है और भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्राचीन स्मारक घोषित है।^{२१} यहां श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के एक-एक जिनालय हैं जो क्रमशः वि०सं० १८९२ एवं १९१३ में निर्मित हैं। यह बात जिनालयों इन पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होती है।^{२२}

ई० सन् १९१२ की बाढ़ में गंगा नदी की तीव्र धारा द्वारा यहां टीलों के रूप में अवस्थित भग्नावशेषों के तीव्र कटाव से एक पाषाण मंजूषा प्राप्त हुई जिसमें गहड़वाल शासक चन्द्रदेव (वि०सं० ११४२-५७) के दो ताम्रपत्र प्राप्त हुए। प्रथम ताम्रपत्र पर वि०सं० ११५० और द्वितीय पर वि०सं० ११५६ के लेख उत्कीर्ण हैं। द्वितीय ताम्रपत्र में चन्द्रावती स्थित चन्द्रमाधव के देवालय को सम्राट चन्द्रदेव द्वारा दिये गये भूमिदान का विस्तृत विवरण है।^{२३} इससे स्पष्ट है कि १२वीं शताब्दी में यहां चन्द्रमाधव का प्रसिद्ध एवं महिम्न देवालय विद्यमान था।

उक्त ताम्रपत्रों के सम्पादन के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ दयाराम साहनी ने इस स्थान का सर्वेक्षण भी किया। उनके विवरणानुसार यहां स्थित श्वेताम्बर जिनालय स्थानीय ग्रामवासियों में चन्द्रमाधो (चन्द्रमाधव) के मंदिर के नाम से जाना जाता था। साहनी ने इस मंदिर के उत्तरी दीवाल पर वि०सं० १७५६ का एक शिलालेख तथा मंदिर में वि०सं० १५६४ की भगवान् शांतिनाथ की काले पाषाण की एक प्रतिमा होने की बात कही है।^{२४} आज यहां उक्त जिनालय में न तो वि०सं० १७५६ का उक्त शिलालेख ही दिखाई देता और न उक्त प्रतिमा ही। भेलूपुर स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में उक्त तिथि की श्याम पाषाण की शांतिनाथ की एक प्रतिमा वेदी में प्रतिष्ठित है जिसके बारे में वहां के पुजारी से ज्ञात हुआ कि उसे चन्द्रावती से लाया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जैन परम्परा में चन्द्रावती की भौगोलिक स्थिति की सर्वप्रथम चर्चा **विविधतीर्थकल्प** अपरनाम **कल्पप्रदीप** में ही देखने को मिली है। इस स्थान की प्राचीनता के सम्बन्ध में प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कह पाना कठिन है किन्तु उक्त तात्प्रपत्रों से यह स्पष्ट है कि वि०सं० की १२वीं शती में इसकी प्रसिद्धि रही और विक्रम सम्वत् की चौदहवीं शती में यह स्थान चन्द्रप्रभ के च्यवन, जन्म, दीक्षा और कल्याणक भूमि के रूप प्रतिष्ठापित हो चुका था।

जिनप्रभसूरि के वाराणसी के सम्बन्ध में सबसे उल्लेखनीय बात है इस नगरी के चार भागों में विभाजन का वर्णन।^{१५} सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में वाराणसी का इस प्रकार का विवरण अन्यत्र नहीं मिलता, अतः यह विवरण अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है। **देव वाराणसी** के अन्तर्गत जिनप्रभसूरि ने विश्वनाथ के मंदिर की चर्चा करते हुए कहा है कि इसमें चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमा से युक्त एक पाषाण फलक भी रखा हुआ है।^{१६} इसी ग्रन्थ के “चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रहकल्प” में उन्होंने विश्वनाथ के मंदिर के मध्य में चन्द्रप्रभ की प्रतिमा होने की बात कही है। वाराणसी स्थित विश्वनाथ का मंदिर १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निर्मित है। हो सकता है प्राचीन मंदिर में जिनप्रतिमायुक्त कोई पाषाणखंड रखा रहा हो। यद्यपि ब्राह्मणीय परम्परा के किसी भी मंदिर में जैनप्रतिमाओं का रखा जाना अस्वाभाविक लगता है किन्तु इसे पूर्णतः असंभव भी नहीं कहा जा सकता।

राजधानी वाराणसी में यवनों के निवास करने का उल्लेख है।^{१७} यह वर्तमान अलईपुर के आस-पास का क्षेत्र हो सकता है। आज भी यहां मुसलमानों की जनसंख्या है।

वाराणसी के वर्तमान मदनपुरा मुहल्ले को नामसाम्यके आधार पर जिनप्रभ द्वारा उल्लिखित **मदन वाराणसी**^{१८} माना जा सकता है।

जिनप्रभद्वारा उल्लिखित विजय वाराणसी^{१९} वर्तमान में छावनी (कैन्टोनमेन्ट क्षेत्र) हो सकता है। चूंकि प्राचीनकाल में शहर के बाहर विजयस्कंधावार, जिसे छावनी भी कहा जाता था, स्थापित किये जाते रहे। इस आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वाराणसी का वर्तमान कैन्ट क्षेत्र, जिसे आज भी छावनी कहा जाता है, विजय वाराणसी हो सकता है।

मध्य युग में पश्चिम भारत से सम्मत्तशिखर जाने वाले प्रायः सभी यात्री संघ वाराणसी होते हुए ही गुजरते थे क्योंकि यह उनके मार्ग में स्थित था साथ ही यह सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ व श्रेयांसनाथ की जन्म भूमि के रूप में भी मान्य रहने से प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी के लिये अपार श्रद्धा का भी केन्द्र रहा और आज भी है।

सन्दर्भ :

१. मुनि जिनविजय, संपा०- **विविधतीर्थकल्प**, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १०, शान्तिनिकेतन १९३४ ई०।
२. वही, पृष्ठ १०९.
३. वही, पृष्ठ ७२-७४.
४. वही, पृष्ठ ८५.
५. प्रो० सागरमल जैन, “पार्श्वनाथ जन्मभूमि मंदिर, वाराणसी का पुरातत्वीय वैभव” **श्रमण**, वर्ष ४१, अंक ४-६, पृष्ठ ७७-८८.
६. प्रा० एम०ए० ढांकी से व्यक्तिगत चर्चा पर आधारित।
७. धातुवाद-रसवाद-खन्यवाद-मन्त्रविद्याविदुराः शब्दानुशासन-तर्क-नाटका-ऽलंकार-ज्योतिष-चूडामणि-निमित्तशास्त्रसाहित्यादिविद्यानिपुणाश्च पुरुषा अस्यां परिब्रजकेषु जटाधरेषु ब्राह्मणादिचातुर्वर्ण्ये च नैके रसिकनांस प्रीणयन्ति। चतुर्दिगन्तदेशान्तरवास्तव्याश्चास्यां जना दृश्यन्ते सकलकलापरिकलनकौतुहलिनः। “वाराणसीनगरीकल्प”, **विविधतीर्थकल्प**, पृष्ठ ७४.
८. अस्याः क्रोशत्रियते धर्मेक्षानामसंनिवेशो यत्र बोधिसत्त्वस्योच्चैस्तरशिखचुम्बितगगनमायतनम्। वही, पृष्ठ ७४.
९. अस्याः सार्धयोजनद्वयात्परतश्चन्द्रावती नाम नगरी, यस्यां श्री चन्द्रप्रभोर्गर्भावतारादिकल्याणिकचतुष्टयमखिलभुवन जनतुष्टिकरमजनिष्ट। वही, पृष्ठ ७४.
१०. विजयधर्मसूरि, **प्राचीन तीर्थ माला संग्रह**, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर वि०सं० १९७८, पृष्ठ ८२-८४.
- ११-१२. शिवप्रसाद, **जैनतीर्थो का ऐतिहासिक अध्ययन**, पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ५६, वाराणसी १९९१ ई०, पृ० ९२-९४.
१३. दयाराम साहनी, “चन्द्रावती प्लेट्स ऑफ चन्द्रदेव वि०सं० ११५०-११५६” **इपिग्राफिया इण्डिका**, जिल्द XIV, पृ० १९२-२०६.
१४. वही, पृ० १९७.
१५. वाराणसी चेयं सम्प्रति चतुर्धा विभक्ता दृश्यते। **विविधतीर्थकल्प**, पृ० ७४.
१६. देववाराणसी, यत्र विश्वनाथ प्रासादः। तन्मध्ये चाश्मनं जैन चतुर्विंशति पट्टं पूजारूढमद्यापि विद्यते। वही, पृ० ७४.
१७. द्वितीय, राजधानी वाराणसी यत्राद्यत्वे यवनाः। वही, पृ० ७४.
१८. तृतीया, मदन वाराणसी, -----, वही, पृ० ७४.
१९. चतुर्थी, विजयवाराणसीति। वही, पृष्ठ ७४.



जैन एवं बौद्ध श्रमण-संघ में विधि शास्त्र का विकास : एक परिचय

डॉ० चन्द्ररेखा सिंह*

मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में आचारगत विधि-व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय धर्म-परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आचारशास्त्र (विधिशास्त्र) के विभिन्न सिद्धान्तों, दृष्टियों और मर्यादाओं का वर्गीकरण हुआ। तदनुरूप धर्म या सम्प्रदाय विशेष में प्रतिष्ठापित नियमों, सिद्धान्तों के अनुरूप व्यक्ति अपने आचार-व्यवस्था या विधि या नैतिक-व्यवस्था का पालन करता है। अतएव प्रायः सभी धर्मों का केन्द्रबिन्दु यही आचारगत-नैतिक व्यवस्था मानी जाती है। इसीलिए यह मानव धर्म का नियामक तत्त्व भी है। देशकालानुसार इन विधि-व्यवस्थाओं में परिवर्तन-परिवर्धन होते रहते हैं।

भारतीय संस्कृति की दो मूल धारायें हैं - एक प्रवृत्तिमार्गी वैदिक (ब्राह्मण) संस्कृति और दूसरी निवृत्तिमार्गी श्रमण संस्कृति। दोनों संस्कृतियों में श्रमण वर्ग के आचार के अनेक नियम, उपनियम एवं विधि सम्बन्धी सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। श्रमण संस्कृति के प्रतिनिधि बौद्ध व जैन धर्म में विधि-संहिता सम्बन्धी नियमों/उपनियमों का वर्णन प्रधान रूप से मिलता है। विधि-व्यवस्था को प्रतिष्ठापित करने के लिए इन दोनों धर्मों में संघ को चार भागों में विभाजित किया गया है -

१. भिक्षु संघ, २. भिक्षुणी संघ, ३. श्रावकसंघ (उपासक संघ), ४. श्राविका संघ (उपासिका संघ)

भिक्षु-भिक्षुणियों (साधु-साध्वियों) का सुव्यवस्थित एवं नियमित धार्मिक संगठन होता है जबकि श्रावक-श्राविकाओं का संघ उतना नियमित और संगठित नहीं होता है। श्रावक-श्राविकाओं को अपने व्रत, नियम, कर्तव्य आदि के पालन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता होती है। वे अपनी रुचि, शक्ति, परिस्थिति आदि के अनुसार यथायोग्य धार्मिक क्रिया-काण्ड करते हैं एवं समाज के सामान्य नियमानुसार व्यावहारिक प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं। गृहस्थ वर्ग समाज-व्यवस्था का परिपालन जीवनोपयोगी वस्तुओं का उत्पादन एवं संरक्षण करके करता है, जबकि श्रमण वर्ग सांसारिक वस्तुओं के पूर्णतः त्याग का उद्देश्य लेकर आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर

* पूर्व शोध छात्रा, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

होता है। वह गृहस्थ वर्ग को आध्यात्मिक मार्ग का पाथेय प्रदान करता है जिस पर चलने के लिए गृहस्थ को कुछ विशिष्ट प्रकार की आचार-व्यवस्था या विधि-व्यवस्था का अनुपालन करना होता है।

इस प्रकार भिक्षु एवं भिक्षुणी-संघ का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ये श्रमण-परम्परा के आधार-स्तम्भ हैं। जैन एवं बौद्ध श्रमण-संघ में निवृत्तिपरक आचार-संहिता या विधि-संहिता का निरूपण हुआ है। विधि व्यवस्था आचरण सम्बन्धी नियमों की परिपालना है जो व्रत के नाम से जानी जाती है। 'व्रत' किसी अन्य द्वारा जबरदस्ती नहीं थोपे जाते अपितु नैतिक उत्कर्ष की ओर अपने दृढ़ कदम बढ़ाता हुआ मानव स्वेच्छा से इन्हें स्वीकारता है। दोनों धर्मों में अधिकांश विधि सम्बन्धी नियमों एवं उपनियमों का निर्माण विशेषतया भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए किया गया है। जैन एवं बौद्ध श्रमण संघ में यद्यपि व्यक्तिगत साधना की व्यवस्था भी सुरक्षित है, फिर भी सामुदायिक साधना की पद्धति ही मुख्य रही है।

श्रमण-संघ की विधि-व्यवस्था के पीछे मुख्य रूप से आध्यात्मिक चिन्तन रहा है। जैन एवं बौद्ध आचार व्यवस्था का आधार क्रमशः भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के उपदेश ही थे। परन्तु यह भी सत्य है कि नियम और उपनियमों का निर्माण तीर्थंकर ही नहीं करते, बहुत से ऐसे नियम और उपनियम हैं जिनके निर्माता श्रुतकेवली भद्रबाहु और अन्य अनेक गीतार्थ स्थविर रहे हैं। उन्होंने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को दृष्टि में रखकर मूल नियमों के अनुकूल उनके समर्थक और अविरोधी नियमोपनियम का निर्माण किया है। जैन आगमों के सर्वप्रथम संस्कृत टीकाकार आचार्य हरिभद्र ने यह स्पष्ट कहा है कि जो भी नियम संयम-साधना में अभिवृद्धि करते हों और असंयम की प्रवृत्ति का विरोध करते हों वे नियम भले ही किसी के द्वारा निर्मित क्यों न हों, ग्राह्य हैं।

जैन और बौद्ध परम्परा मूलतः आचार प्रधान रही हैं। दोनों परम्पराएँ आचार पर बल देती हैं किन्तु दोनों की पद्धति में उल्लेखनीय अन्तर है। 'आचार' को लेकर ही जैन एवं बौद्ध धर्म में विभिन्न सम्प्रदाय खड़े हुए हैं - जैसे श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी और हीनयान, महायान आदि। बौद्ध परम्परा में आचार के स्थान पर 'शील' तथा जैन परम्परा में 'आचार' और 'चारित्र' शब्द का प्रयोग किया गया है।

श्रमण का जीवन एक उच्चस्तरीय नैतिकता एवं आत्मसंयम का जीवन है। श्रमण संस्था पवित्र बनी रहे इसलिए श्रमण संस्था में प्रविष्ट होने के लिए कतिपय योग्यताओं एवं नियमों का होना आवश्यक माना गया है। जैन एवं बौद्ध परम्परा में भिक्षु संघ में प्रवेश पाने के लिए यद्यपि वर्ण एवं जाति को बाधक नहीं माना गया

तथापि उसमें कुछ व्यक्तियों को संघ में प्रवेश देने के अयोग्य माना गया। इस प्रकार बौद्ध परम्परा में, 'श्रमण-दीक्षा के लिए योग्यता' के सन्दर्भ में लगभग वे ही विचार उपलब्ध हैं, जो जैन-परम्परा में हैं। दोनों ही परम्पराओं में श्रमण-दीक्षा के लिए माता-पिता एवं परिवार के अन्य आश्रितजनों की अनुमति आवश्यक मानी गयी है।

श्रमण-संघ के जो दो मूल विभाग हैं : साधु वर्ग व साध्वी वर्ग, संख्या की विशालता को दृष्टि में रखते हुए इन वर्गों को अनेक उपविभागों में विभक्त किया जाता है, जिसमें साधु-साध्वियों की सुविधानुसार देख-रेख व व्यवस्था की जा सके। यही उनकी संगठनात्मक व्यवस्था है। जैन एवं बौद्ध दोनों श्रमण संघों में संगठनात्मक व्यवस्था का एक क्रमिक विकास परिलक्षित होता है। प्रारम्भ में संघ में दीक्षित होने वाले प्रत्येक नर या नारी को भिक्षु या भिक्षुणी के नाम से जाना जाता था। परन्तु संघ में इनकी संख्या में वृद्धि होने के कारण तथा प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए दोनों संघों में क्रमशः अनेक पदों का सृजन हुआ जैसे - आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, श्रामणेरे, मुनि, प्रवर्तिनी, आर्यिका, शिक्षाणा, गणि आदि। जैन एवं बौद्ध श्रमण संघ की संगठनात्मक व्यवस्था में आचार्य तथा उपाध्याय के पदों को महत्त्वपूर्ण माना गया है इन पदों पर केवल भिक्षु ही अधिष्ठित हो सकता है - कोई भिक्षुणी नहीं। अतः दोनों संघों में सर्वोच्च पद भिक्षुओं के लिए ही सुरक्षित है। संगठनात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न पदों के लिए आवश्यक कर्तव्य तथा अधिकार निश्चित कर दिये गये थे। विभिन्न पदों पर आसीन श्रमण या श्रमणी, संघ के सभी नियमों के विज्ञ एवं प्रशासनिक योग्यता में अत्यन्त निपुण होते थे। दोनों श्रमण संघ पद-विभाजन तथा ज्येष्ठता के अनुसार उनके कर्तव्य एवं अधिकार संघ तक ही सीमित थे। संघ के बाहर अर्थात् श्रावक-श्राविकाओं के लिए वह सामान्य रूप से भिक्षु-भिक्षुणी के रूप में जाने जाते थे। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि दोनों धर्मों में भिक्षु-भिक्षुणियों को भिक्षु-भिक्षुणी-पद प्राप्त करने के पहले विधि-नियमों का सम्यक् रूपेण ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था।

जैन एवं बौद्ध दोनों श्रमण संघों में भोजन, वस्त्र, पात्र, श्रमण, विहार (उपाश्रय) आदि के बारे में विधिशास्त्रीय नियमों का विधान किया गया है। भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए प्रायः समान नियमों की व्यवस्था है। उपर्युक्त विषयों के, विधि सम्बन्धी जो नियम निर्धारित किये गये थे उनमें कालान्तर में एवं समयानुकूल परिवर्तन-परिवर्धन होते रहे। दोनों श्रमण-संघों की मान्यता थी कि श्रमण के लिए न अशन का निर्माण किया जाय, न वसन का और न भवन का निर्माण किया जाय। श्रमण उद्दिष्ट त्यागी थे। अनुद्दिष्ट और उपयोगी वस्तु को ही श्रमणों लिए ग्रहणीय माना गया। **दशवैकालिक^१**, **सूत्रकृतांग^२** आदि में अनेक स्थलों पर औद्देशिक आहार आदि ग्रहण करने का निषेध

किया गया है, जबकि वैदिक परम्परा के सन्त और बौद्ध परम्परा के भिक्षु उद्दिष्ट आहार ग्रहण करते थे।

दोनों संघों में भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए सादा और सात्विक भोजन का प्रावधान है जिसमें शुद्धता का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। साथ ही यह भी ध्यान रखा गया है कि भिक्षु-भिक्षुणियों के भोजन का भार समाज के किसी एक व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष पर न पड़े। इस प्रकार आहार के सम्बन्ध में दोनों संघों में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है। जो अन्तर है वह दोनों के दृष्टिकोण को लेकर ही है। जैन संघ अति कठोर आचार में विश्वास करता है जबकि बौद्ध संघ मध्यममार्गी है और वह कुछ परिस्थितियों में अपने सदस्यों को छूट देता है।

जैन और बौद्ध श्रमण संघों में वस्त्र सम्बन्धी नियमों के विस्तृत उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैन संघ में अचेलकत्व की प्रशंसा की गयी है तथा दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार बिना अचेलकत्व के मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त नहीं की जा सकती। परन्तु इस कठोर दृष्टिकोण के बावजूद श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में निर्वस्त्रता का पूर्णतया पालन सम्भव न हो सका। श्वेताम्बर परम्परा के आगम ग्रंथ **आचारांग** से लेकर बाद के परवर्ती ग्रन्थों तक में वस्त्र सम्बन्धी अनेक नियमों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि दिगम्बर परम्परा में ऐसे विस्तृत नियमों का अभाव है, परन्तु भिक्षुणी के सम्बन्ध में दिगम्बर सम्प्रदाय भी वस्त्र धारण करने का विधान करता है। अचेलकत्व का समर्थन अपरिग्रह महाव्रत के सम्बन्ध में किया गया है। बौद्ध संघ में अचेलकत्व का कभी भी अनुमोदन नहीं किया गया। निर्वस्त्र रहने पर भिक्षु को 'थुल्लच्चय' दण्ड का प्रायश्चित्त करना पड़ता था। वस्त्र को वितरित करने के लिए संघ में कुछ पदों का भी निर्माण किया गया। बौद्ध संघ की यह व्यवस्था जैन संघ में नहीं दिखाई पड़ती। प्रारम्भ में दोनों संघों में भिक्षु-भिक्षुणियों के वस्त्र एवं अन्य उपकरण अत्यन्त सीमित थे, परन्तु कालान्तर में क्रमशः उनमें वृद्धि होती गयी।

जैन एवं बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के यात्रा सम्बन्धी जो नियम बनाये गये हैं उनका मुख्य उद्देश्य जन-सामान्य को धर्मोपदेश देना तथा स्थान-विशेष से अपनी आसक्ति तोड़ना है। सभी सम्प्रदायों के भिक्षु-भिक्षुणियों को वर्षाकाल में एक स्थान पर रुकने का विधान बनाया गया है जबकि वर्षाकाल के चार महीने को छोड़कर शेष आठ महीने (ग्रीष्म तथा हेमन्त ऋतु में) एक ग्राम से दूसरे ग्राम (ग्रामाणुगाम) विचरण करने का निर्देश दिया गया है।^३ नियमों की निर्माण-प्रक्रिया से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि जैनाचार्यों एवं बौद्धाचार्यों ने भिक्षुणियों की जीवन-सुरक्षा और शील-सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था की है।

जैसे-जैसे जैन धर्म का प्रचार बढता गया, जैन भिक्षु-भिक्षुणियों के भ्रमण-क्षेत्र में भी विस्तार होता गया। उन्हें अन्य क्षेत्रों में यात्रा करने का निषेध इसीलिए किया गया ताकि उन्हें आहार तथा उपाश्रय (आवास) आदि प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। बौद्ध भिक्षुणियों को भिक्षु-संघ के साथ ही वर्षावास व्यतीत करने का निर्देश दिया गया है, क्योंकि बौद्ध भिक्षुणियों के प्रवारणा (प्रतिक्रमण), उपोसथ तथा उवाद (उपदेश) जैसे धार्मिक कृत्य बिना भिक्षु-संघ की उपस्थिति के नहीं हो सकते हैं। इसके विपरीत जैन भिक्षुणियाँ भिक्षु संघ के अभाव में भी अपना वर्षावास व्यतीत कर सकती हैं एवं उपोसथ या प्रवारणा के लिए उन्हें भिक्षु-संघ के समक्ष उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार भिक्षु-भिक्षुणियों को यात्रा सम्बन्धी अनेक मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। संघ के नियमानुसार जैन एवं बौद्ध दोनों भिक्षुणियों को अकेले यात्रा करने की अनुमति नहीं है।

जैन भिक्षु-भिक्षुणियों को यद्यपि जीव-जन्तुओं से युक्त^५ तथा उद्देश्यपूर्वक निर्मित^६ उपाश्रय (आवास) में ठहरना निषिद्ध है, परन्तु इन नियमों का अपवाद देखने को मिलता है। जैन भिक्षुओं के निवास के लिए गुफाओं या विहारों के निर्माण के उल्लेख ईसापूर्व की शताब्दियों से ही प्राप्त होने लगते हैं। मथुरा के एक शिलालेख से^६ ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य एक जैन मन्दिर के विद्यमान होने का प्रमाण प्राप्त होता है। इसमें उत्तरदासक नामक एक श्रावक द्वारा एक प्रासाद-तोरण समर्पित किये जाने का उल्लेख है।

महात्मा बुद्ध मूलतः बौद्ध भिक्षु-संघ या भिक्षुणी-संघ के आवास या विहार के निर्माण के समर्थक नहीं थे। भिक्षुओं को उपसम्पदा के समय जिन चार निश्रयों की शिक्षा दी जाती थी उसमें से एक निश्रय के अनुसार उन्हें वृक्ष के नीचे निवास करना है।^७ परन्तु संघ में भिक्षुणियों के प्रवेश के अनन्तर उनकी सुरक्षादि की दृष्टि से अनेक अन्य नियमों का निर्माण किया गया। भिक्षुणी के अकेले रहने या जंगल में रहने पर शील-अपहरण के भय से उनके लिए विहार की व्यवस्था स्वीकार कर ली गई। सिंहली ग्रन्थों से तृतीय शताब्दी ईसापूर्व में भिक्षुणियों के लिए निर्मित विहारों का उल्लेख प्राप्त होता है। भिक्षुणी संघमित्रा के ठहरने के लिए देवानांप्रिय तिस्स ने हत्थाल्हक विहार बनवाया था।^८ अतः बौद्ध भिक्षुणियों के लिए विशिष्ट विहार निर्मित हुए, परन्तु जैन भिक्षुणियों के लिए इस प्रकार के किसी विशिष्ट विहार का उल्लेख नहीं प्राप्त होता और न ही किसी जैन भिक्षुणी को 'नवकम्मक' अथवा 'विहारस्वामिनी' कहा गया।

उत्तराध्ययन^९ में जैन 'श्रमण-संघ' की दिनचर्या सम्बन्धी नियमों का विस्तार से वर्णन किया गया है। षट् आवश्यक (सामायिक, स्तवन, वन्दन, प्रतिक्रमण,

कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान), प्रतिलेखन, आलोचना, ध्यान, स्वाध्याय, भिक्षा-गवेषणा एवं तपादि दिनचर्या के प्रमुख कृत्य हैं। जैन श्रमण-संघ के समान बौद्ध श्रमण-संघ की दिनचर्या का कोई क्रमबद्ध वर्णन नहीं प्राप्त होता है। फिर भी बौद्ध श्रमण-संघ के लिए वन्दना, अध्ययन, अध्यापन, उपदेश, भिक्षाचर्या, ध्यान, समाधि आदि दिनचर्या के आवश्यक कृत्य हैं। दोनों धर्मों के अनुसार भिक्षुणी किसी भिक्षु को उपदेश नहीं दे सकती है, परन्तु अपनी शिष्याओं तथा गृहस्थ भक्तों को उपदेश देने का उन्हें पूरा अधिकार है।

जैन एवं बौद्ध दोनों धर्मों में श्रमण संघ के शील सम्बन्धी नियमों की एक विस्तृत रूप-रेखा प्राप्त होती है। प्राचीन आचार्यों को ब्रह्मचर्य-मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का ध्यान था। इसी कारण प्रव्रज्या का द्वार सबके लिए खुला होने पर भी कुछ अनुपयुक्त व्यक्तियों को उसमें प्रवेश की आज्ञा नहीं थी।^{१०} संघ में प्रवेश के समय अर्थात् दीक्षा-काल में ही इसकी सूक्ष्म छानबीन की जाती थी।

जैसे-जैसे संघ का विस्तार बढ़ता गया, इन नियमों की अवहेलना होती गयी और अनेक सतर्कताओं एवं गहरी छानबीन के बाद भी अयोग्य व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) संघ में प्रवेश पा जाते थे। सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक छानबीन के उपरान्त भी ब्रह्मचर्य-स्खलन की घटनाएं घटती रहीं। यह परिकल्पना की गयी कि यदि मनुष्य हमेशा कार्य में लगा रहे, तो बहुत कुछ अंशों में 'काम' पर विजय पायी जा सकती है इसीलिए प्रतीकात्मक कथा के माध्यम से संघ के सदस्यों को यह सुझाव दिया गया कि वे हमेशा ध्यान एवं अध्ययन में लीन रहें तथा मस्तिष्क को खाली न रखें।

भिक्षुणियों की ब्रह्मचर्य-रक्षा का उत्तरदायित्व भिक्षु-संघ पर भी है। उनकी शील की रक्षा के निमित्त आचार के बाह्य नियमों का कितना भी उल्लंघन हो, सब उचित है। संघ का यह स्पष्ट आदेश था शील की रक्षा के लिए भिक्षु हिंसा का भी सहारा ले सकता है। अतः संघ की रक्षा एवं उसकी मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए महाव्रतों की विराधना को भी कुछ अंशों तक उचित माना गया एवं कुछ अपवाद भी स्वीकार किये गये। इस प्रकार जैनाचार्यों एवं बौद्धाचार्यों ने भिक्षुणियों के शील-भंग सम्बन्धी प्रत्येक परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए उसके निवारण के लिए अनेक नियम बनाये एवं शील-सुरक्षार्थ कभी-कभी व्यवस्थित नियमों में परिवर्तन भी किया।

जैन ग्रन्थों में भिक्षु-भिक्षुणियों से सम्बन्धित नियमों का अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि प्राचीन आगम ग्रन्थों यथा- **आचारांग**, **स्थानांग** आदि की अपेक्षा परवर्ती ग्रन्थों **गच्छाचार**, **बृहत्कल्पभाष्य** आदि के रचना काल के समय में भिक्षुणियों के ऊपर भिक्षुओं का और भी अधिक कठोर नियन्त्रण हो गया। **स्थानांग** में कुछ विशेष परिस्थितियों में भिक्षु-भिक्षुणियों को परस्पर एक दूसरे की सहायता करने, सेवा करने

तथा साथ रहने का भी विधान था, परन्तु गच्छाचार तथा बृहत्कल्पभाष्य के रचनाकाल तक इन सब पर कठोर नियन्त्रण लगा दिया गया।

जैन एवं बौद्ध दोनों ही धर्मों में जाति, लिंग, धर्म, वर्ण आदि का भेद किये बिना पुरुष और स्त्री की समानता पर बल दिया गया, परन्तु इनकी संगठनात्मक व्यवस्था पर तत्कालीन सामाजिक मूल्यों का गहरा प्रभाव पड़ा है। भिक्षु-भिक्षुणियों के मध्य नियमों की समानताओं एवं सैद्धान्तिक उच्चादर्शों के बाद भी यह स्पष्ट है कि दोनों धर्मों में भिक्षु की तुलना में भिक्षुणी की स्थिति निम्न थी। जैन एवं बौद्ध धर्म में क्रमशः “पुरुषज्येष्ठ धर्म” के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। दोनों ही संघों में सद्यः प्रव्रजित भिक्षु चिरप्रव्रजित भिक्षुणी से श्रेष्ठ माना गया तथा भिक्षुणियों को भिक्षु की वन्दना तथा कृतिकर्म करने का निर्देश दिया गया।

जैन एवं बौद्ध भ्रमण-संघों में संघ की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथैव नियमों को दृढ़ता से स्थापित करने के लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी। दण्ड के भय से भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ नियमों का अतिक्रमण नहीं करेंगे, यह विश्वास किया गया। अपराध करने पर उसके निवारण के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। प्रायश्चित्त अनिवार्य है भले ही उसकी गुरुता अत्यन्त कम हो। दण्ड का उद्देश्य हमेशा शिक्षात्मक होता था। अभियुक्त को उपयुक्त दण्ड देने के अतिरिक्त अन्य लोगों को शिक्षा देने के लिए इसका प्रयोग किया गया। इसके मूल में यह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता निहित हो सकती है कि बुरे व्यक्ति भी अच्छे बन सकते हैं और ऐसा कोई कारण नहीं है कि एक बार सत्पथ से विचलित हुए भिक्षु-भिक्षुणी को यदि सम्यक् मार्गदर्शन मिले तो वह सुधर नहीं सकते हैं।

जैन एवं बौद्ध धर्म में श्रमण-संघ की स्थापना उन नारियों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई जो समाज से किसी प्रकार संन्यस्त थीं। ऐसी नारियों को जिन्हें सामाजिक प्रताड़नाओं से मुक्त सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का कोई विकल्प नहीं था, जैन एवं बौद्ध धर्मों के श्रमण संघों ने आश्रय एवं भयमुक्त वातावरण प्रदान किया। श्रमण-संघ ने विद्याध्ययन के लिए स्वस्थ वातावरण प्रदान किया। ऐसे कई जैन एवं बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं जो आगमों एवं पिटकों में निष्णात थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रमण-संघ में विधिशास्त्र की उपयोगिता कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। यह एक विशिष्ट प्रकार का आश्रयस्थल तथा सुधारगृह है जहाँ भयमुक्त अनुकूल वातावरण मिलने पर नर-नारियों को अपने ज्ञान एवं बुद्धि के चतुर्दिक् विकास का सुनहरा अवसर उपलब्ध हुआ। इस प्रकार श्रमण-श्रमणियाँ विधिशास्त्रीय नियमों का परिपालन करते हुए लोक-कल्याण हितार्थ समाज को शुभ

प्रेरणा देते हैं और स्वयं भी नैतिक चरम (मोक्षावस्था) की स्थिति पर पहुँचते हैं। इस प्रकार तत्कालीन समाज के लिए श्रमण-संघ का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। निस्सन्देह, जैन एवं बौद्ध श्रमण-संघ की स्थापना एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी। दोनों परम्पराओं के गहन अध्ययन से पता चलता है कि श्रमणों के लिए बनाए गए विधि/नियम दोनों धर्मों के विकास में कहाँ तक सहायक रहे हैं।

जैन एवं बौद्ध धर्मों में आचार सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी है। बौद्ध ग्रन्थ यथा- महावग्ग, चुल्लवग्ग तथा निकाय साहित्य में यत्र-तत्र ही भिक्षु-भिक्षुणियों के आचार या विधि नियमों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैन ग्रन्थों जैसे आचारांग, स्थानांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प सूत्र, व्यवहारसूत्र, निशीथसूत्र तथा इनके व्याख्या एवं टीका ग्रन्थों में जैन भिक्षु-भिक्षुणियों के विधि से सम्बन्धित नियम बिखरे हुए प्राप्त होते हैं।

श्रमण परम्परा से सम्बन्धित आधुनिक काल में भी अनेक पुस्तकें प्रकाश में आयी हैं यथा 'Contribution to the History of Brahmanical Asceticism' (H.D. Sharma), Early Buddhist Monachism (Sukumar Dutta), Early Monastic Buddhism (Nalinaksha Dutta), History of Jain Monachism (S.B. Dev), Early Buddhist Jurisprudence (D.N. Bhagavat), Jaina Monastic Jurisprudence (S.B. Dev) आदि पुस्तकें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिनमें श्रमण परम्परा के आचार सम्बन्धी नियमों का एक सम्यक् चित्र उपस्थित होता है।

सन्दर्भ :

१. दशवैकालिक, ३/२, ६/४८-४९, ८/२३, १०/४/०४.
२. सूत्रकृतांक, १, ९, १४.
३. बृहत्कल्पसूत्र, १/३८.
४. मूलाचार, ९/१९.
५. मूलाचार, १०/५८-६०.
६. A List of Brahmi Inscription, 93.
७. "रूक्खमूलेसेनासनं" महावग्ग, पृ० - ५५.
८. महावंस, १९/८२-८३.
९. उत्तराध्ययन, २६वाँ अध्याय.
१०. बृहत्कल्पभाष्य, भाग चतुर्थ, ४१२९-४६.



फतेहपुर सीकरी से प्राप्त श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) की प्रतिमा

डॉ० अशोक प्रियदर्शी*

सीकरी आगरा जिलान्तर्गत जिला मुख्यालय के दक्षिण में लगभग ३५ कि०मी० दूर विन्ध्याचल की शृंखलाओं के विस्तार पर एक विशाल प्राकृतिक झील के किनारे पर स्थित है यह झील अब प्रायः सूख चुकी है (जैन साहित्य में इस झील को 'मोती झील' अथवा 'डाबर झील' कहा गया है)।^१ जबकि फतेहपुर मुख्य रूप से सीकरी के निकट ही दक्षिण में मुगल बादशाह अकबर द्वारा अपनी द्वितीय राजधानी आदि के निमित्त निर्मित भव्य एवं शानदार स्मारकों का दैदीप्यमान समूह है। इस प्रकार फतेहपुर सीकरी दो प्रमुख स्थलों का संयुक्त नाम है। वर्तमान में फतेहपुर सीकरी की विश्व-प्रसिद्धि का कारण अकबर द्वारा निर्मित यहाँ के गौरवपूर्ण स्मारक हैं जो उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा संरक्षित किये जा चुके हैं।^२ कालांतर में यूनेस्को द्वारा इन स्मारकों के समूह को उनकी किलेनुमा दीवारों एवं विशाल दरवाजों सहित संरक्षित करते हुए इसे 'विश्वदाय स्थल' घोषित किया गया।^३

१९८२-८३ ई० में सीकरी की उपर्युक्त झील के दक्षिण-पूर्वी किनारे पर स्थित बीरछबीली टीला के उत्खनन से कुछ जैन मूर्तियाँ, स्थापत्य-सम्बन्धी अवशेषों के साथ-साथ एक जैन मन्दिर का अधिष्ठान भी प्रकाश में आया।^४ १९९८-९९ ई० में फतेहपुर सीकरी के क्षेत्र से एक बृहद सर्वेक्षण के समय बड़ी संख्या में जैन एवं ब्राह्मण धर्म से सम्बंधित मूर्तियाँ एवं मन्दिरों के स्थल प्राप्त हुए।^५ इन उपलब्धियों से उत्साहित होकर मुगल शासक बाबर के पूर्व इस क्षेत्र का इतिहास एवं पुरातत्व जानने के उद्देश्य से यहाँ के किसी एक पुरा-स्थल का उत्खनन कराना आवश्यक हो गया। ऐसी स्थिति में बीरछबीली टीला का पुनः विधिवत उत्खनन कराया गया जिसमें बड़ी संख्या में जैन मूर्तियाँ अभिलेखों के साथ प्राप्त हुई हैं।^६ प्राप्त मूर्तियों में श्रुतदेवी जैन सरस्वती की मूर्ति विलक्षण एवं अद्वितीय है।^७ आलोच्य शोध-पत्र में इस अनुपम कृति का ही वस्तुपरक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ श्रुतदेवी जैन सरस्वती की गुलाबी रंग की प्रस्तर-मूर्ति का प्राप्त होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह मूर्ति अलंकृत पादपीठ पर अंकित कमल-पुष्प पर त्रिभंग-मुद्रा में खड़ी है (चित्र - १)।^८

* 'चामेलिका' विवेक विहार, मैनपुरी - २०५ ००१



चित्र - १, श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) विक्रम सं० १०६७/१०१० ईसवी

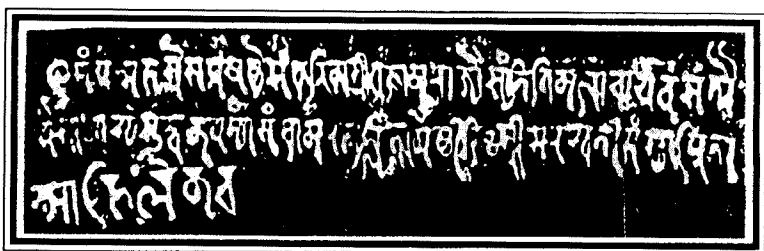
यद्यपि यह मूर्ति पैरों के पास से खंडित है, फिर भी अपने मूर्ति-विन्यास के कारण हिन्दू सरस्वती से पूर्णतः पृथक् प्रतीत होती है। जैन साहित्य में इस मूर्ति को 'वास्तु' एवं 'प्रतिमा' के रूप में जाना जाता है।^१ इस मूर्ति में देवी को पूर्ण युवा दर्शाया गया है, उनका रंग साफ है। उनके सिर पर प्रभामंडल है, तथा वे सिर से पाँच तक सभी प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं। उनके चार हाथ हैं जिनमें से दाहिने दो हाथों में वे क्रमशः एवं वरद, जबकि बायें अन्य दो हाथों में क्रमशः पुस्तक एवं माला पकड़े हुए हैं। स्मरण रहे कि इस मूर्ति का दायाँ-बायाँ एक-एक हाथ टूटा हुआ है। उनके प्रसिद्ध वाहन हंस का भी गर्दन के ऊपर का सम्पूर्ण अंग टूट गया है। मूर्ति के दोनों ओर पादपीठ पर अवस्थित खंडित स्तंभों के चार सुरक्षित ताखों में जिनों की मूर्तियाँ विभिन्न मुद्राओं में उत्कीर्ण हैं जो इस मूर्ति की यथेष्ट पहचान के लिए पर्याप्त हैं कि अमुक मूर्ति जैन सरस्वती की है। इसकी छवि अद्भुत है। देवी के जटामुकुट में कमल की कलियाँ गुथी हुई हैं। अलंकृत कीर्ति-मुख, माथे पर संकुचित-लट, कानों में तीन प्रकार के कुण्डल, ग्रविका (गले का आभूषण), कंठश्री (कंठ की शोभा), वैयाजन्तीहार, भुजाओं में अलंकृत एवं दुहरे केयूर (बाजूबंद), कलाईयों में हस्तवलय (कंगन), चीते जैसे लोचदार कटि प्रदेश पर कटिसूत्र, जंघाओं पर घुटनों

तक सुसज्जित उरुदाम, पैरों में पादवलय आदि वस्त्राभूषणों के साथ-साथ धनुषाकार भौहें, रतनारे नयन, पतली एवं लम्बी नाक, गोल ठोढ़ी, प्रभावशाली गाल एवं पतले होंठों के अतिरिक्त सम्पूर्ण अंग-सौष्ठव इस कृति के श्री-सौंदर्य को द्विगुणित करते हुए उत्कृष्ट मूर्तिकला को प्रदर्शित करता है। इसकी पादपीठ पर १०वीं-११वीं सदी की नगरी लिपि में, संस्कृत एवं स्थानीय भाषा में दो पंक्तियों का एक अभिलेख उत्कीर्ण है (चित्र - २)।^{१०} इसका लिप्यंत्रण इस प्रकार है -

“ओं (सिद्धम्) संवत्सहस्रे सप्तषष्ठे सैकरिक्य श्रीवज्रामराज्ये सांतिविमला-
चार्यवसतौ वैसाखस्य सुद्धनवम्यां संचामरभल्लिक- यशेष्ठीभिः स्त्रीसरस्वती
संस्थापिता आहिलेन च”

[ओं (सिद्धम्) विक्रम संवत् १०६७ वैसाख शुक्लपक्ष की नवमी (१०१० ई०) के दिन सैकरिक्य में श्री वज्राम के राज्य में शांतिविमलाचार्य की बस्ती में संचामर और भल्लिक्य गौत्र वाले श्रेष्ठियों के द्वारा श्री सरस्वती की प्रतिमा स्थापित करवायी गयी, और आहिल ने भी]।^{११}

स्मरणीय है कि श्रुतदेवी की उपासना विशाल जैन मंदिरों में होती थी।^{१२} सारतः यह मूर्ति सीकरी के बड़े जैन मन्दिर में उपासना के निमित्त प्रतिष्ठित थी।



चित्र - २, श्रुतदेवी (जैन सरस्वती) के पादपीठ पर उत्कीर्ण अभिलेख

ऐसा प्रतीत होता है कि आहिल उस शिल्पी का नाम है जिसने मूर्ति उत्कीर्ण की थी। उसका भी योगदान इस मूर्ति की स्थापना में है। चूँकि मूर्तिकार ने अपना नाम बाद में जोड़ा है, इसलिए शेष लेख की अपेक्षा आहिल शब्द सुन्दर एवं बड़े अक्षरों में अंकित है। इस सन्दर्भ में ऐसे ही विचार अधिकांश विद्वानों के हैं।^{१३} अभिलेख की भाषा व्याकरण एवं शाब्दिक दृष्टि से कमजोर है और कई शब्द तो अपभ्रंश हैं। लेख में उल्लिखित ‘सैकरिक्य’ शब्द महाभारत^{१४} में इस स्थल के प्रयुक्त शब्द ‘सैक’ से बहुत-कुछ मिलता जुलता है, साथ ही दोनों शब्द लगभग एक जैसे अभिप्राय से युक्त प्रतीत होते हैं। वास्तव में दोनों शब्द अपने-अपने कालान्तर्गत स्थान विशेष के लिए आरोपित किये गये होंगे। श्री वज्राम ग्वालियर का कच्छघात शासक वज्रदमन है जो

लक्ष्मण का पुत्र था। महीपालकालीन ग्वालियर अभिलेखानुसार राजा वज्रदमन ने ९७५-९५ ई० तक शासन किया था।^{१५} परन्तु आलोच्य अभिलेख इस ग्वालियर नरेश के शासनकाल को १०१० ई० तक विस्तारित करते हुए यह भी उद्घाटित करता है कि वज्रदमन के समय में कच्छपघात वंश का आधिपत्य फतेहपुर सीकरी तक तो निश्चित रूप से स्थापित था।

इस अद्वितीय मूर्ति के सौम्य-सौंदर्य को देखते हुए पुरातत्वविद् डॉ० धर्मवीर शर्मा का कथन है कि अब विश्व में फतेहपुर सीकरी को इस अद्वितीय मूर्ति के कारण जाना जायेगा। यदि विश्व में फतेहपुर सीकरी का नाम अमर रहेगा तो इस मूर्ति के कारण। विश्व के किसी भी जैन मन्दिर में इतनी सुन्दर जैन सरस्वती की मूर्ति नहीं है।^{१६} वास्तव में इतनी प्राचीन मूर्ति होते हुए भी इसका मनमोहक रूप देखते ही बनता है। कौन ऐसा कला-पारखी होगा, जो इसकी अप्रतिम सुन्दरता को देखकर दंग न रह जाये? निश्चित रूप से यह अनुपम कृति २०वीं सदी में प्राप्त महत्वपूर्ण पुरातात्विक उपलब्धियों में से एक है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में फतेहपुर सीकरी जैन धर्म कला-संस्कृति का लब्ध-प्रतिष्ठित केन्द्र रहा होगा।

सन्दर्भ :

१. डी०वी० शर्मा, एक्सकेवेसन एट बीरछबीली टीला, सीकरी, पृ० ५६.
- २-३. न्यूली डिस्कवर्ड इन्क्रप्शन्स फ्राम एक्सकेवेशन एट फतेहपुर सीकरी, आ०स०ई०, आगरा सर्किल, पृ० ५.
४. डी०वी० शर्मा, एक्सकेवेसन एट बीरछबीली टीला, सीकरी, पृ० ५६.
५. रिसेन्ट डिस्कवरीज एण्ड कन्जरवेसन ऑव मॉनुमेण्ट्स, आ०स०ई०, आगरा सर्किल, पृ० ३.
- ६-७. डी०वी० शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० ५६-६२, न्यूली डिस्कवर्ड इन्क्रप्शन्स फ्राम एक्सकेवेशन....., पृ० ७.
८. डी०वी० शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० ६१, प्लेट-६
९. वही, पृ० ६०. १०. वही, पृ० ६२.
११. वही, पृ० ७१; न्यूली डिस्कवर्ड इन्क्रप्शन्स....., पृ० ७.
१२. न्यूली डिस्कवर्ड इन्क्रप्शन्स....., पृ० ८.
१३. डी०वी० शर्मा, पूर्वोक्त, पृ० ७१.
१४. न्यूली डिस्कवर्ड इन्क्रप्शन्स....., पृ० ३.
- १५-१६. डी०वी० शर्मा, पूर्वोक्त पृ० ६२-६३.



Status of Women in Jain Community

Dr. Reeta Agrawal*

The traditional society of India is undergoing a series of changes. Multi directional forces of urbanisation, industrialization and socio - educational advancement are affecting Indian society. As various aspects of a society are interrelated, change in one aspect evokes change in the other.

Women have played an important role in our social life. Indian society has always been appreciated for its feminine virtues like gentleness, tenderness, quietness and calmness. The contribution of Indian women towards nation - building and household job has always been appreciated and respected. Late Pt. Jawaharlal Nehru had always stressed in his speeches, that unless the status of women of a society is raised, the society cannot claim to be a developed and progressive one. Thus it is very important for a society or community as to how it behaves with their women, as to what is the attitude of that community towards its women folk. Generally women constitute half of the population of any community and it is really significant as to known the community treats with its half population.

The present work was undertaken with the aim to make a study of the status of women in Jain Community in Indore city. It is a proverb that the best way to judge the position of any community is to find out the status of its women.

For the purpose, the selection of respondents was made through the purposive sample method. In all 150 respondents were interviewed with the help of a Schedule. Out of 150 respondents, 50 were daughters, 50 were daughters-in-law and 50 mothers-in-law, respectively in the age group of below 25 years, 25 to 40 years, 25 to

** Reader, Department of Education, Sri Agrasen Kanya Autonomous P.G. College, Varanasi.*

40 years and above. This type of sample was selected purposively to find out changes taking place in the status of women of three generations. Generation gap was the main criteria for making all other inquiries about the different status components. It was purposively kept in view while making the field survey, that the respondents interviewed should represent three generations. The respondents interviewed were selected by lottery system.

Educational Status

The effect of the Industrial revolution on the liberation of women is well known. The ideal of equal opportunities for women has obtained a place in the society. In case of 80% of daughter it was reported that their parents are willing to impart higher education to their daughter. This indicates a changes in the outlook of the parents in Jain community. We find that many girls are taking admissions in college for their higher education.

Economic Activities

It is a fact for Indian women that generally they seek work out economic need, rather than to even with men. Careerism has yet not relegated to the background of their lives. Economic dominance of men has yet not been challenged. Even the educated women and the women who have acquired a successful confidence do not want to rebel against male dominance. In Jain community majority of women of all the three types did not engage themselves in any economic activities (out side).

Social Activities

It was strange enough to note that even today majority of daughters reports that they do not have freedom to take part in social activities. They cannot move alone from the fear of parents that some thing may happen with them. Hence they do not allow them to take part alone in social activities of course they can taken part alongwith their parents. Cent percent mother-in-laws reported that in their earlier age they were not allowed to take part in social activities.

Mahatma Gandhi severally commented for undermining the status of women. He saidsomehow or the other men has dominated

women from age past, and so women have developed an inferiority complex. She has believed in the truth of man's interested teaching that she is interior to him. Human beings are equal in their ability. The study also concludes that the social environment is not conclusive to enable a woman to move freely inside the society whether it is inside the market place or in the cinema hall. Women always apprehend bad comments, misbehaviour and harassments from their male counter-parts.

The traditional outlook that women should not move freely in society seems to be still prevailing in the mid of the male folk.

Thus the paper can finally be concluded with the comments have been rightly mentioned in the report of the committee on the status of women in India. Government of India, Ministry of Social Welfare, 1974).

"The deep foundations of the inequality of the sexes are built in the minds of men and women through a socialization process which continues to be extremely powerful. Right from their earliest years, boys and girls are brought up to know that they are different from each other and this differentiation is strengthened in every way possible....through language forms, modes of behaviour, of labour etc. The only institution which can counter-act the effect of this process is the educational system. If education is to promote equality for women, it must make a deliberate, planned and sustained effort so that the new value of equality of sexes, can replace the traditional value system of inequality. The educational system today has not even attempted to undertake this responsibility....."

Political Activities

Indian women today are equal in law, unequal in fact. Though equality of opportunities to both males and females in every sphere of human activity is, no doubt, a difficult task. Our late Prime Minister Mrs. Indira Gandhi on the commemoration of International Women's year (IWY), 1975 also said that, "Our women have more rights, than women of other countries, but there are large areas wherein women are suffering, where, many they are not conscious of their rights." (G. Erving, 1975).¹

No respondents took ever any part in political activities put majority of daughters (58%) are interested in national and local political activities. They read newspapers with interest and have a curiosity to know what is going on in political field at international, national, provincial and local levels. But majority of daughter-in-laws (60%) and mother-in-laws (70%) have no interest in politics. 60% daughters, 40% daughter-in-laws and 62% mother-in-laws opined in favour of India Gandhi.

Conclusion

The status of women is a complex question. It has be studied very minutely. In many phases, it was observed that significant and revolutionary changes have come in the status of women in Jain community. Love marriage is not popular among Jain women. They still prefer a marriage arranged by their parents. Equal treatment with girls i.e. treatment like their brother (at present house) is also a significant observed in case of Jain women.

The present study shows that many phases the status of women in Jain community has changed and an adoption of modernity in the life style and values can be observed. But in many phases they are still traditional. Thus the present study shows that both traditionality and modernity can be seen it the status of women. This is true not only for the women belonging to Jain community alone, but remains a fact for all Indian women.

Thus the present study also concludes that the role of women in any community is very important, no one can ignore it. So in order to help women to raise their status, they attitudes of men, women and society at large towards women's, particularly towards career women's position in society both at work have to be changed through the socialization process, educational system.

References :

1. G. Erving, *Indira Gandhi Talks about Women and International Women's year*, Eve's Weekly, May, 10, 1975, p. 8.
2. P. Kapur, *The Changing Status of the Working Women in India*, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi - 1974.



Concept of Sūkṣma Śarīra in Indian Philosophy

Dr. Saroj Sharma*

The doctrine of subtle body is available in *Upaniṣads*. In *Chāndogya Upaniṣad* subtle body is said to be made up of five vital breraths, ten sense powers and as the sixteenth parts, the mind (*manas*). These sixteen parts form the subtle body of *jīva*. The *jīva* on account of being reflected by this subtle body constituted of sixteen parts, is called *Ṣoḍaśakalaḥ puruṣaḥ*¹. According to Caraka, subtle body is the aggregate of subtle elements (*tanmātras*) of the earth (*prthivī*); water (*apa*), fire (*teja*) and air (*vāyu*). Ether (*ākāśa*) has not been included in the category of subtle body since it is all pervading in its magnitude.

Subtle body is eternal till it is liberated. The subtle body receives a new body after each birth, and each death along with self and *manas*. It is minute, therefore, it can not be perceived by sense-organs.² It is minute but it is not atomic. It is non-eternal because it is destroyed after liberation. It is a seat of soul. It is invisible and it can be seen only by *Siddha Yogīs*.³ Under the influence of *karma*, it enters in the womb of any creature and takes birth accordingly. When it enters in the womb of a woman it takes shape of a human.⁴

According to *Sāṃkhya* the subtle body is composed of five sense organs (*jñānendriya*), ego (*ahaṁkāra*), mind (*manas*) and five subtle elements (*tanmātras*)⁵. Subtle body carries all the impression of previous life.⁶ Subtle body is the basis of *buddhi* (intellect), *ahaṁkāra* (ego) and *ātman* (soul).⁷ *Vijñānabhikṣu*⁸ and *Bhavāganeśa*⁹ admit that it is composed of eleven senses, five subtle elements and *buddhi*. They do not include *ahaṁkāra* in the subtle body.

In the *Sāṃkhya - Pravacana - Bhāṣya* it is described that the subtle body, like a little flame, pervades the whole room by its

* *Department of Philosophy and Religion, B.H.U.*

rays.¹⁰ The subtle body takes rebirth on the basis of Karma theory.¹¹ Rebirth depends on the action performed in the previous life. The subtle body migrates from one body to another in successive birth. It persists as long as true knowledge does not arise.¹²

The Yoga view of the subtle body is different from Sāṃkhya concept. According to Yoga a body has a capacity to contract and expand, leave any body at death and occupy another body without intermediate relationship with subtle body (*ātivāhikaśarīra*). But it arises a problem that if the *citta* can not itself leave the body and occupy another, how does it connect itself with *sūkṣma śarīra* at the time of the death. On this problem, *Dasgupta* has mentioned that “if is to be done through another body and that through another, then we are led to a vicious infinite. It is argued that the *citta* is connected with such a subtle body from beginningless time, then the reply is that such a subtle body has never been perceived by anyone; nor can it be regarded as indispensably necessary through inference, since the *yoga* view can explain the situation without the hypothesis of any such body. The *citta* is all pervading, and each soul is associated with a separate *citta*. Each *citta* connects itself with a particular body by virtue of the fact that its manifestations (*vr̥tti*) are seen in that body. Thus the manifestations of the all pervading *citta* of a soul cease to appear in its dying body and become operative in a new body that is born.”¹³ On the basis of above fact, it is not necessary to accept the existence of subtle body.¹⁴

Vaiśeṣika system of philosophy denies the role of subtle body (*sūkṣma śarīra*) in the growth of fetus. Nyāya philosophy has not given any importance to subtle body.¹⁵ Soul transfers from one body to another body with the help of *manas*, which is atomic in its magnitude and it is not visualized when it leaves the gross body at the time of death. Soul is all pervading at the time of rebirth, it is connected with a particular body.¹⁶

According to Vedānta, *Sūkṣma śarīra* is made of fine particles of elements. *Bhūta Sūkṣmaih*, which are also associated with five types of *vāyu* subtle body has been regarded as the composition of the

five essential components namely *manas*, *buddhi* and five types of *prāṇa-vāyu*.¹⁷ It is made of very minute materials, therefore, it can not be perceived at the time of death. Commenting on Brhadāranyaka Upaniṣad, Śaṅkara has mentioned the composition of the subtle body. According to him subtle body is made of five quintuple elements, five motor organs, five cognitive elements, five vital forces, mind, intellect, egoism, memory, *avidyā*, attachment, (*kama*), merit and demerit and law of *karma*.¹⁸ It is eternal till it is liberated. In a dream state it is the *sūkṣma śarīra* who witnesses all the actions when all the sense-organs are disassociated with *manas*.

According to Vedānta five *kośas* (sheath) are responsible for the function of body. These five *kośas* are - *annamaya*, *prāṇamaya*, *jñānamaya*, *manomaya*, *ānandamaya*. Among five *kośas* *jñānamaya*, *manomaya* and *prāṇamaya* are called *sūkṣma śarīra*. In Vedānta, the function of subtle body is little bit different from the function of Śāṅkhya. *Sūkṣma śarīra* consists of three powers [1] Power of knowledge, [2] Power of desire and [3] Power of action. The *jīva* is intermixed with the *kośas* at the time of liberation. *Vijñānamaya* *kośa* is responsible for the power of knowledge. The *manomaya* *kośa* includes all the actions. The *vijñānamaya* *kośa* stops functioning during the course of sleep.¹⁹ *Annamaya* and *manomaya* *kośas* are always under the process of changes. The *Prāṇamaya* *kośa* is the binding force which is responsible for all the mental and physical activities in the body. Dream is the manifestations of the subtle body in which objects are created by sub-conscious impressions.²⁰ According to Caraka Saṁhitā, the human body is made of *pañcamahābhūtas*, which is also the seat of consciousness,²¹ The union of *śukra* (sperm) and *śoṇita* (ovum) are responsible for the formation of foetus. The ātman come into the contact with *śukra* (semen) and *śoṇita* (ovum) along with the subtle elements (*bhūtātma*).²² Similarly, in the Śūśruta Saṁhitā, it is mentioned that the subtle body enters the mother's body at the time of the union of the *śukra* and *śoṇita*.²³ Both the *śukra* (sperm) and *śoṇita* (ovum) are made of *pañcamahābhūtas*. *Prthivī* (earth) and *apa* (water) are the dominate *bhūtas* in semen while *tejas* (fire) is more dominate in ovum.²⁴

The development of gross body is based on the concept of *sūkṣma śarīra* because gross body can not develop without the help of *sūkṣma śarīra*. The *sūkṣma śarīra* enters in the mother's womb along with the *jīvātman*. *Jīvātman* is responsible for the development of foetus which is manifested in the form of *stūla-śarīra*. In Sāṃkhya Yoga, *citta* is the ultimate cause of worldly suffering and bondage. The liberation from *pañcamahābhūtas* (gross body) is the ultimate object of Vedānta philosophy.

References :

1. *Chāndogya Upaniṣad*, VI, 71.
2. *Caraka Śarīra*, 2.31.
3. *Caraka Śarīra*, 2.31.
4. *Sāṃkhya Tattva Kaumudī*, 41.
5. *Sāṃkhya Pravacana Bhāṣya*, III, 9.
6. *Sāṃkhya Kārikā*, 39.
7. *Sāṃkhya Tattva Kaumudī*, 39.40.41.
8. *Sāṃkhya Sūtra*, III, 9.
9. *Sāṃkhyatattvayāthārthyadipana*, 5-6.
10. *Sāṃkhya Pravacana Bhāṣya*, V, 103.
11. *Sāṃkhya Tattva Kaumudī*, 42.
12. *Sāṃkhya Kārikā*, 40.
13. S.N. Dasgupta, *A History of Indian Philosophy* Vol. II, p. 305-366.
14. Pātañjali - *Yogasūtra*, with the commentary of *Tattva Vaiśārādī* - Vachaspati Mishra, IV : 10.
15. *Nyāya mañjarī*, p. 469.
16. *Nyāya Kaundalinī*, p. 33 quoted from S.N. Dasgupta, *A History of Indian Philosophy*, Vol. II, p. 306.
17. *Brahma Sūtra*, 2.9.10.
18. *Sāṃkhya on Brhadāranyaka Upaniṣad*, 1.4.17.
19. *Pañcadaśī*, 3:7.
20. *Pañcadaśī*, 3:5.
21. *Caraka, Śarīra*, 4.6.
22. *Cakrapāṇi on Caraka Śarīra*, 2:36.
23. *Śūsṛta Śarīra*, 1:17.
24. *Caraka Śarīra*, 2:4.



Economic Aspect of Non-Violence

Dr. B.N. Sinha*

Economy matters much in human life. In all traditions of world it occupies a prominent position. In the Vedic tradition there have been introduced four 'Puruṣārthas' - Dharma (Religion), Artha (Wealth), Kāma (Desire) and Mokṣa (Liberation). These are the four aspects of human life and they act co-operatively for the betterment of individual life as well as social life. In the *Mahābhārata* there is a long discussion concerning 'Puruṣārthas' between 'Pādavās', in which Arjuna has advocated very strongly the importance of 'Artha'. As he has asserted -

“Artha helps a man in doing all sorts of activities (Karmas). Neither any religious activity nor any desire (Kāma) may be completed without wealth as it has been professed in Śruti || 12 ||¹

The persons who have left money making, who are shameful and peaceful, having clothing of Geruā colour and even the scholars with long bear and moustaches want to attain wealth. These persons who try to have seats in heaven and perform all duties of āśrama and varṇa by following all rules of their heredities and traditions also want to get wealth. || 17-18 ||²

Other orthodox and heterodox who are found expert in restraining themselves and following proper rules, desire to achieve wealth. To be unaware of the importance of wealth is a dark ignorance while to be aware of the value of wealth is a bright wisdom.” || 9 ||¹

The man who has wealth only he has many friends, nears and dears. He is known as He-man (Puruṣa) and scholar (Paṇḍita)²

“It is wealth due to which religious activities are performed, desires are satisfied, seat in heaven is occupied, pleasure is enhanced,

* Former Reader, Deptt. of Philosophy, M.G. Kashi Vidyapeeth, Varanasi

anger is expressed, religious literatures are heard and studied, enemies are defeated and family honour and religions are developed.”³

Arjuna has proved that ‘Artha’ is the best among all Puruṣāthas. Due to wealth Brahmacarya, Vānaprastha and Sarinnyāsa āśramas depend on Gṛhasthāśrama. Whether it is the East or the West or the North and the South all where wealth is honoured because it is the main means to pleasure and prosperities of human life.

Economically the present world may be divided into two classes - (i) Class of developed countries and (ii) class of developing countries. The economies of developed countries are mainly based on exploitation and violence. But they show that they want the improvement of developing nations by getting them benefited by their strong economies. If in the true sense, developed nations like to improve the economic conditions of developing nations and the rich persons want to see the poor people free from their poverties, then what for the whole world is suffering from terrorism and other problems alike. The people following terrorism are in some way or other suffers of economic and political exploitations. The pretension of developed countries is too attractive.

So far the Indian economy is concerned, it is passing through the age of delusion and doubt because it is assuming strength in exploitation, development in deterioration and support of freedom in the invitation of slavery. A few centuries passed foreign companies came in India for the spread of their business and they captured the whole country and made it slave. Just 57 years of freedom have gone, again being illusioned by the attractive economic policies of Western nations India is inviting multinational companies to establish their businesses in its market. The natural raw materials of India have attracted foreign companies. They will exploit Indian economy and will return back as soon as the raw materials of this country will be finished. That will compel Indian people to weep for their poor fate and suicidal situation.

Gold Smith the founder of Ecologist Journal and well-known leader of environmental revolution of Britain, while talking to IANS

has remarked that India is going to damage its own economy very badly, by opening its market for the Western countries and taking help from them on different conditions.

This will cause the poverty of 50 kroras agriculturists. Moreover it will be considered as one of the great crimes of history.

Dainika Jāgarāṇa, p. 11, Dated 31 August, 2002

The *Arthaśāstra* of Kautilya is well-known in Indian literature in which wealth and its importance have been explained. Adam Smith the father of Modern Western Economics has defined economics as-

“Economics is a subject concerned with an enquiry into the nature of causes of wealth of nations”⁴

A Western thinker Marshall has defined economics in the following way.

“Economics is a study of mankind in the ordinary business of life, it examines that part of individual social actions which is most closely connected with the attainment and with the use of the material requisites of well-being”⁵

Economics consists of -

- 1) Production
- 2) Consumption
- 3) Distribution
- 4) Exchange
- 5) Service

The economic aspect of non-violence may be known after studying these parts of economics. Where and how far violence or non-violence is related with economic problems can never be seen till these parts are not analysed.

As it is well-known, non-violence has its two form - (i) Negative form which is the opposition of violence (ii) Positive form is non-violence in itself. Here also these two parts of non-violence may be observed in the five parts of economics.

Production

There are various types of production because human life needs many things in order to satisfy its demands. The main productions may be classified as following -

- 1) Food Production
- 2) Cloth Production
- 3) Medicine Production
- 4) Instruments and Arms Productions
- 5) Building Construction

Food-Production -

The food productions also may be categorised as (a) Production of Corn, Fruit and Vegetables (b). Production of Milk and Curd, (c) Production of Meat (d) Production of different Drinks.

(a) Production of Corn, Vegetables and Fruits - The productions of corn, vegetables and fruits are done through agriculture. In the *Rāmāyaṇa* story of Rājā Janaka is mentioned, who ploughed his land for facing the famine spreading in his kingdom. Lord Kṛṣṇa himself was Gopāla i.e. the man who tames cow. The founder of Jainism Ṛṣabhadeva taught his subjects agriculture. In the modern time the 2nd prime minister of India Śrī Lāla Bahādurā Śāstrī has given a slogan as “Jaya Jawāna - Jaya Kisāna” to encourage military men and farmers.

Agriculture is done by ploughing lands, which causes the killing of numberless insects and the killing, without any doubt, is put in the class of violence. So question arises - Is agriculture a type of violence? Normally it is said that where there is killing there is violence and because agriculture causes injuries so it is a sort of violence. But so far non violence is concerned, in it tension is more important than action. A doctor cannot be blamed as the killer of a patient who dies on the operation table. No doctor has any intension to kill a patient rather he always tries to save the person suffering from disease. In the same way no farmer wants to kill any insect though numberless insects are injured by him while ploughing the land. All farmers desire

to have sufficient corn by farming lands in order to satisfy the food demands of his family and the society in which he lives. Therefore an agriculturist is never blamed as injurer or killer, rather as a well-wisher of the society he is placed in the class of non-injurers.

But these days method of agriculture has been changed, which seems to be injurious and that may be known in the following way -

1) Land Exploitation - In Indian culture the earth or land is addressed as mother (Dhartī Māñ). It is the faith of Indian people that Dharti Māñ ever gives and never takes. But the modern agriculturists have made it false. Due to their deep selfishness agriculturists manure their lands heavily, so that they may produce corn on large scale and they do so successfully. But after a year or two the lands are deserted due to the heavy manuring. They lose the producing power and the farmers fail to get any sort of corn or vegetable or fruit from their lands. In this way the saying - Dharti māñ never takes becomes meaningless when farmers put manure in their lands and other saying "Dharti māñ ever gives" becomes useless when lands stop the origination of plants and trees. This may be considered as the exploitation of lands.

2) Life Damaging Crops - At present Indian people are being devoid of healthy diets because of the fast competition among farmers for producing more and more corn, than one another. They are using manures as much as they can, in their lands which is causing the corn, vegetables and fruits unnatural and unhealthy. They become poisonous. News papers often say about man and animals dying by eating respectively poisonous corn and plants. So the agriculture which aim is to give lives to human beings and animals is now destroying their lives.

3) Unfulfilment of Necessary Demands - The agriculture is now no more agriculture in true sense. It has become a business, because it has been deviated from its real aim. The real aim of agriculture is to provide healthy food to society. But these days farmers are thinking only of money making. They are trying to have the quantity not quality of corn. The surplus of manure used in the lands

causes rottenness of crops like potato before they are brought above land. Even after putting into cold restorage they lose their healthy elements and become useless. More over the expected amount of crops is not attained and that fails to fulfil the necessary demands.

4) Productions of Milk and Curd - Milk and curd are important in vegetarian diets. Though these are classified as vegetarian diets, their productions are injurious. The proper treatments are not paid to the animals like cows, buffalos etc. from which milk is attained.

a) Food not sufficient - There are many persons who take milk from cows and buffalos but they do not give them sufficient food, particularly in Varanasi which is known as religious place, cows are left free to move in streets and on roads after milking them. They eat papers, dirty cloths and rotten things thrown by the sides of roads. Simply at the time of milking they get some proper food and that is only for the time when they are found able to give milk, otherwise no food is given by their tamers and they (cows) have shelters in streets and open fields.

b) No Medicine - No medicine is given to the animals like cows and buffalos when they become ill. It is very common feeling that animals should be treated as an animal not as human beings though they are strong helpers of human beings. The Hindu saint Tulsidas has declared that animals are worthy to be tortured (Tāraṇa ke Adhikārī)

c) Injurious way of Milking - Human Beings never tolerate participations of some other persons in their mother's milk. But they, while milking cows and buffalos, forget that these poor animals have also their issues which have full right on their mother's milk. The issues of cows and buffalos even die without getting proper quantities of their mother's milk. The business minded persons kill them knowingly by paying them poor nourishment.

Moreover, when cows and buffalos do not give milk naturally, they are injected cruelly twice in a day so that they may be ready for milking. It is the scientific method of milking through which animals

are tortured and milk is polluted. Though milk is considered as one of the healthy diets, it becomes too much unhealthy when it is milked on the basis of artificial method.

d) Artificial Method of Pregnancy - The science has discovered the artificial way of pregnancy of animals. So, often tamers of cows and buffalos get them pregnant through artificial method for saving their time and energy. They do not care that like human beings animals also want to satisfy their sexual demand by coupling with their opposite sex. The animals are devoid of natural sexual satisfaction which may be considered as violence. As the non-violence way of living claims that even animals should be helped for enjoying their natural life.

e) Way to Butchery - The oxen, cows, buffalos etc. during their whole lives, help human beings by ploughing their fields, carrying their heavy things, giving milk etc. But as soon as they become old they are neglected by their masters. The cruel masters, instead of showing gratitude to them for their different helping activities, sell them to butchers who bring them to butcheries. In the butcheries the poor old animals are killed for getting their flesh and leathers.

f) Process of Curd - Making - The curd is vegetarian diet, which is made of milk. The process of making curd from milk is well known. A small quantity of curd which is known in Hindi as 'Jivan' or 'Jemana' or 'Jāman', 'Jorana' etc, is mixed with milk and after eight to ten hours the milk itself changed into curd. As scientists proclaim, in the small quantity of curd or Jemana which is mixed with milk there is some sort of bacterias, which spreads in the milk and causes the change of milk into curd. The curd is known as good as the bacterias spread in the milk. The process of making curd which is seen generally at different places also supports the scientific theory. In the summer season Jemana is mixed in the milk when it becomes cold after being boiled and in the winter season Jemana is put into the milk when it is found hot to some extent. Perhaps this process is maintained for getting the bacterias alive. If it is right the curd may be known as a collective form of bacterias and use of curd is injurious.

But here is a clash between religion and science. Normally in India curd is used in religious functions, as vegetarian diet and it is never accepted as injurious thing. So traditionally curd is non-injurious while scientifically it is injurious.

g) Production of Meat and Fish - Meat and fish are also considered as human diet. In the western countries they are taken as common food. In India also meat, eating has been coming from ancient time. Meat eating has been accepted even in some religious function like sacrifice system (Bali prathā) in the Vedic religion and Kurbānī-system in Islam. The meat eating on religious occasions have been opposed by those who consider it an irreligious activity but still it is going on. In forests, hilly places and states like West Bengal taking of meat and fish is very common in the normal human life. It is becoming popular day by day. After freedom India government being influenced by Western countries, has accepted meat as a common food. Now meat and fish are known as means to the fulfillment of food demand of increasing population of country. India the land of propounders of non-violence, like Mahāvira, Buddha, Gāndhī etc. is now giving importance to meat and fish productions like Western countries. The old data of 1993, which might have been increased, proves the developing Indian interest of meat and fish productions.

“India 1993”⁶

1. Agriculture - Annual Egg Productions-1991-92 -21.7 Billians
Annual Egg Production - 1992 - 93 - 22 Billians - Page - 402.

2. Meat Productions -

a) In India - 3600 Butcheries

b) The biggest butchery of Asisa is in Devanara (Bombay)

Butchery in Usagavan (Gova)

Durgapura (West Bengal)

Majitan (Gangatoka, Sikkim) 1991-92

Meat of 138 krores supplied to foreign countries-Page 403.

3. 1991-92 Fish Production - 41-57 Lacs Tana. Six times more than before.

4. Pig-Development

Pig one Krora

100 Pig-taming place conducted by government with 29000 Pigs.

Within last five years 79000 Piglets distributed to 28000 agriculturists.

The fertile lands of agriculturists are misused for fish production. According to Kṛṣṇamalla and Jaganāthan the production of a particular type of fish named 'Prāṇa has been started by some wealthy persons in Sirakali. This type of fish production is like gold-store for rich persons but it has become curse for agriculturists. In one hectare of land fish producers earn Rs. 10 lacs per year but the poor people loose their lands and become unable to get fresh water. So the fish production has become very damaging for Tamilnadu. In this way the injurious economy has become very sorrowful for villagers.⁷

The meat and fish productions are conducted with three motives-

i) Luxury - Ordinarily in the rich families meat and fish used for luxurious dishes.

ii) At present human beings are thinking to satisfy their food demand by eating flesh of different animals and fishes.

iii) Foreign currency - The meat and fish are supplied to other nations to earn foreign currencies.

Cloth-Production -

Cloth is generally produced in factories of wealthy persons who are known as capitalists. The other people who work in the factories are known as labours. The capitalists and labours are found related but not co-operatively. The capitalists always exploit labours. They like richness of themselves and poverty of labours. The poor labours are compelled by their poverty, to be exploited by wealthy factories owners. Karl Marx has tried to see the labours free from exploitation by establishing the "*Theory of Surplus Value*" The

capitalist claims that only they have right to get the surplus value or benefit gained in the factories because they provide the capital needed for the management of factory work. But Karl Marx is of opinion that only capital cannot produce anything till labours do not work in the factories. The benefit is obtained due to both capital and labour. Therefore labours have equal right of receiving benefit. They cannot be neglected. The benefit or surplus value should be divided equally between capitalists or factory owners and labours.

The Śilka is quite famous in cloths. It is preferred in religious performances. It is considered pure and pious more than other cloths. At the time of religious performances conducted by rich persons, the priests normally use śilken dresses. The śilk is produced by killing the worms which are tamed purposely for śilk. The Silk production cannot be possible without killing Silk-worms. So the Silk production is fully injurious, but it is wonderful that even after being injurious, it is used in religious function.

Mahatma Gandhi a strong propounder of the theory of non-violence, in the modern age, has layed stress on the *Khādi-Production*. He has assigned that Khādi is not only a type of cloth, but it is way of living, Khādi is a practical form of non-violence which is the only basis of freedom. According to Gandhiji India has obtained freedom due to non-violence only. But Gandhi Āśramas, the centres of Gandhian-Productions, produce śilk also which is a direct injury. So question arises - why Gandhi Āśramas established by Mahatma Gandhi are interested in producing śilk. Gandhiji himself has never supported the use of Silk. In his opinion one should have cloth as much as the share of the total cloth production is allotted to him. The share may be decided on the basis of total production of cloths and the population of country. For poor people of India use of śilk is a luxury. Gandhiji has ever supported necessity he has never thought of luxury. The followers of Gandhiji have neglected Gandhian non-violence and with a view to make money, to earn foreign currencies and to come in the competition of world market, have included śilk in Gandhian-Productions.

Medicine - Production

Medicines are produced to save life, whether it is human life or animal life. So medicine production in itself is a *form of non-violence*. But medicines are produced in the factories on the large scale for which labours are employed, but on the lower payment rather poor payment. In the factories of medicines labours are exploited just like the labours of other factories. Moreover artificial product of medicines is seen in practice. The artificial medicines always harm the ill-persons who take them. In stead of being recovered by medicines, from illness the patient dies after taking artificial medicines. In the medicine production different animals like dog, monkey etc. are utilised. All experiments of new medicines and injections are done on these animals. Even parts of their bodies are also used for making medicines. These all are forms of violence which may be removed as far as possible.

Productions of Drinks

Different types of drinks are produced by big companies in which exploitation of labours causes violence undoubtedly. Alcoholic drinks like wine are being produced too much for getting money. The fashion of taking alcoholic drinks is spreading day by day and it has become status symbol. A man is known as a man of modern status and fashionable when he takes wine openly, without any hesitation. But this alcoholization of society is resulting into corruptions and crimes by which Indian culture is being spoiled. There are other drinks which are known as cold drinks and are liked normally by all people. Though they are sweet and tasteful to take they are not suitable to human health they result into injurious activity.

The government is playing contradictory roles in the production of alcoholic drinks. On the one hand it declares the prohibition of taking the alcohol and on the other hand it allows producing alcoholic drinks and their selling in the open market.

Arms Productions

Human beings fear from beasts but it is astonishing enough that men fear from men also. Either on individual level or social

level or national level who will be attacked by whom, cannot be said openly and clearly. Therefore arms are manufactured for defence. America is on the top of arms manufacturing in the whole world. After that come Germany, Britain, France, Russia, China etc. The developing countries buy arms with a view to protect their nations from external attacks done by other nations. This activity strengthens the economies of developed nations and the ways of improvement of developing countries are blocked due to the lack of money. The arms manufacturing has reached up to the atom-bomb which is too much dangerous for the whole universe. On the universal stage all nations oppose the manufacturing of atom-bomb, but directly or indirectly all countries which are capable to produce it, are producing atom-bombs and other harmful and injurious arms. Therefore peaceful human life has been becoming painful day by day.

Production of other necessary commodities

There are many commodities useful for human life which are being manufactured in different factories in which labours are exploited and capitalists make money. The shoes and bags are used very commonly for which leather production is necessary. Among all leathers calf-leather is known as the softest one. The shoes made of calf-leather are well known and liked by rich persons. The calf leather is found too soft because it is made of the skins of calves. Generally calves are of small age and the cruel process of taking skins from their bodies begins till they are alive. This cruelty is done in leather factories of those wealthy persons who are well known as social, religious and kind men in their societies.

Building Constructions

The building constructions is one of the social and religious works because people get shelters in different buildings. But the process of building construction is also found injurious because labours are exploited in it. The contractors earn money by exploiting not only labours but the whole society. The materials used in construction have neither proper quantity nor quality. So the bridges constructed by the modern contractors are flown away by the first

flood of their life. Even roofs of many buildings fall down in their construction periods. The contractors feel themselves responsible for anything wrong in the construction till the inauguration of building is not performed. They do not care for any ruin concerning the newly built building. This irresponsibility of contractors may be considered injurious for society.

Consumption

Several commodities are produced to fulfil the demands of human life. So, after production things are utilised by people according to their needs and likings. That is known as consumption. Economists have analysed consumption and have introduced its three forms -

i) Necessity, ii) Comfort, iii) Luxury

i) Necessity - Necessity is the first stage of human demands which includes in it those things without which human - existence is impossible. Such things are food, cloth, residence, medicine, education etc. Without taking food, no body can be seen alive. Cloths protect a man from heat and cold. A man becomes social by putting garments. The residence is necessary for a man in order to have a safe and peaceful life. On road no body can lead a safe and pleasant life. At the time of being ill, everybody needs medicine so that he may be healthy. Education is also one of the necessities of human life. Without education, the knowledge which is necessary for proper human life, cannot be attained. Due to these necessary things a man becomes a social man, otherwise he remains simply an animal. If the necessary things are not provided to somebody, it causes social injury. It is the duty of society to provide all things needed for the human existence, to everybody otherwise social violence is committed.

ii) Comfort - Comfort is the second stage of human life which is seen above the stage of necessity. Here only existence of life does not matter, but a man wants something more than the bare existence. At the stage of comfort a man wants tasteful food, not only simple bread and vegetable. He desires to put on fine cloths, not rough cloths. He likes to reside in the building which has proper light and

ventilation. It is but natural that when necessities are fulfilled a man tries to lead a comfortable life. The comfortable life requires more means and money than the requirement of the stage of necessity. So the man desirous to enter into comfortable life makes effort to earn much money for which he marches on the path of dishonesty. Every where he tries to take more than his proper share. He cheats others. He collects much money by befooling others so that he may have a pleasant and comfortable life. Thus, by loosing the social and moral values he comes in the clutch of violence.

iii) Luxury - Luxury is the third stage of human life. The luxurious life is led only by wealthy persons who use costly things and those things which are not used by common people. They enjoy delicious dishes not ordinary food and costly garments. They live in the buildings which are highly decorated and full of various luxurious items. They travel by cars and planes. They have several servants to their services. The rich persons, in order to enjoy their own luxurious life, spoil the lives of many other persons. They not only exploit poor people but also treat with them very badly. The black marketing and smuggling are done generally by those rich persons who lead luxurious life. Thus luxurious consumption is based on injurious activities.

Now it may be concluded that violence is seen at all stages of consumption but in different ways. At the stage of necessity violence is done by society when it does not provide necessary items to different individuals suffering from hunger and illness. But at the stages of comfort and luxury violences are committed through unsocial and unethical activities by those persons who want to enjoy comfortable and luxurious lives.

Distribution

In a country all necessary commodities are produced in different companies and factories, for pleasant and proper human life of the people living in it. They are expected to be distributed justly, among all natives of the nation. The distribution done honestly helps the nation in maintaining a pleasant social life in it. But in the case of

distribution done dishonestly economic disparity prevails there which spoils the economic, social and ethical life of the nation. The poor and weak people of the society suffer a lot from the lackness of necessary items while clever and rich persons have surplus quantity of necessary things which are misused by them.

The government, in order to prevent the unequal distribution of necessary commodities manages shops controlled by government itself in which wheat, rice, sugar, oil, cloths etc are sold on the controlled rates. Moreover, from the controlled shop a man cannot purchase anything as much as he desires. Because right of purchasing a thing from government shop depends on the number of the family members. But generally the shop-keepers and clever persons of society violate the government rules and the distributions of commodities runs unequally. The unequal and unjustified distribution of necessary things causes violence.

Exchange

Exchange consists of giving and taking. A man gives something to somebody from whom he takes something according to his need. In ancient time exchange was very trouble some. There was Barter system according to which commodities were being exchanged because there was no currency. A man in need of rice and having extra wheat, used to search the man having extra rice and in need of wheat. It was very difficult to search out man according to own necessity. But after the discovery of currency the exchange has become easy. A man sells his extra things by receiving currencies and he purchases the things he needs by paying currencies to the shopkeepers or to the persons who sell his extra things. Exchange may be seen in the factories where labours work and in stead of that they receive labour-charges. In schools and colleges teachers teach students and for that they get salaries. In the same way exchange may be seen in the different fields of human life. But, the exchange becomes unjustified and injurious when values of things exchanged are assessed dishonestly and unequally. The assessment of labour of labours working in the factories and the money given to them as

their labour charges is the burning example of unequal assessment which presents an injurious form of exchange. According to the theory of non-violence exchange must be based on equal assessment.

Service

Service occupies prominent place in the improvement of a nation. If the natives of a nation fail to pay honestly services to their nation, they cause the weakness of its economy. Without proper services a nation is declared looser in all spheres. Services are generally of two types - (a) Private-Services (b) Government-Services.

Private - Services - In the private services all powers are reserved by the employers. Appointments and dismissals depend on employers will. The employee, if dismissed for any mistake, cannot claim his right against his dismissal. In non-technical private services workers receive ordinarily poor salaries or sometimes fixed salaries, though they are compelled to work much more than the payment they receive. But in technical private services workers get salaries more than the government grades, though they also have to work laboriously. In the private services permanence of service do not matter. According to the privileges expected to be received, workers move from one company to other companies. But it is well known that in the private services employees are exploited by their employers.

Government - Services - People working in the companies, factories and other institutions established by government are known as government employees. They are appointed according to the government rules and regulations. So their dismissals, in any case, also follow the government rules. The employees challenge government against their dismissals. Even the promotions of employees follow the rules concerned. But the government employees, after being permanent, do not care for their duties honestly. In the government companies and offices works at different stages are neglected like anything. So, often government companies and factories fail. The failures of government factories hamper the government economy and the poor nation suffers from all economic problems.

In short it may be known that in the private services employees are exploited by the employers while in the government services employer i.e. government is exploited by employees i.e. government servants. On the whole economic injuries are committed.

Ancient Business in the Jaina Tradition

In the Jaina tradition following businesses have been prohibited to be done because they depend on violence.⁸

1) **Aṅgāra Karma** - The business concerning fire, such as Coal-Making, Brick Making etc.

2) **Vana Karma** - Works depending on forest-cutting as selling-wood; cutting-forests for the purpose of village establishment etc.

3) **Śakata Karma** - Manufacturing of wooden conveyance as two wheeled carriage (Tāṅgā) etc.

4) **Bhāri Karma** - Use of oxen for load carrying.

5) **Sfota Karma** - Mining and Stone Breaking.

6) **Dattavāṇijje** - Business of Elephant - Teeth.

7) **Lakṣāvāṇijje** - Wax - Business.

8) **Rasavāṇijje** - Business of Drinks like wine etc.

9) **Viṣa Vāṇijje** - Business of different kinds of poisonous things.

10) **Keśavāṇijje** - Selling and Purchasing of Hair and Beings with Hairs.

11) **Yantrapiraṇa Karma** - Production of Oil through some instruments.

12) **Nirlāncchana Karma** - Work of making animals impotent.

13) **Dāvagnidāna Karma** - To burn forests.

14) **Sarohradatarāgaśosanatā Karma** - To make Tank and Ponds Dry.

15) **Asatijanapoṣaṇatā Karma** - To keep pross for misconduct and to tame cats and dogs with a view to prey.

More over in *Kuvalayamalā* some works unworthy to be done have been discussed with a view point of avoiding violence -

a) Gambling, b) Thieving, c) Snatching ornaments, d) Robbery, e) Pick-Pocketing, f) Forgery, f) Deceiving.

The Positive form of Economic Non-Violence

The positive form of economic non-violence has been found in the different Indian traditions in the following way -

Vedic Tradition - "The king should not take so much tax from the businessmen who buy and sell several commodities on either high rate or low rate and pass through difficult paths, so that they may not feel sorrow."⁹

Kautilya, with a view point of consumer's convenience, has advised that the prices should be fixed by the officers appointed for the fixations of justified prices (Panyādhikārī) because they are well-knowers of business. Again to make his economic theory more clear, he says Panyādhyikari should know in detail the commodities produced in land or water, brought through water ways, landways, much valuable or less valuable and their demands according to their popularity and utility or unpopularity and unutility.¹⁰ This advice given by Kautilya shows that the consumers should not be cheated in the absence of right knowledge of actual prices of the necessary things they want to purchase.

Kautilya has also asserted that even the instruments for measuring the commodities should be made of iron. If they are of stone, that should be of Magadha and Mekal otherwise they may be broken fully or partly which will cause the measurement lesser than the wanted one. Moreover the measuring instrument should be checked after every four months.¹¹ These are the precautions taken against the doubted violence in the field of business.

Jaina Tradition - In the Jaina tradition following activities have been accepted as the proper means of earning wealth.¹²

- i) To go to the countries, with business purpose.
- ii) To make partners.

- iii) Services to king.
- iv) To attain ability in measurement.
- v) To prepare gold from different chemicals.
- vi) To earn wealth through Mantras.
- vii) To pray gods and goddesses for achieving wealth.
- viii) Agriculture.
- ix) To cross seas with business motive.
- x) Mountaineering and Mining.
- xi) Business.
- xii) Services.
- xiii) Handicrafts.

According to the Jaina ethics mining may be included in the injury of one sensed being (Ekendriya Jiva), but from the view point of achieving wealth it has been excused for business.

Buddhist Tradition - Lord Buddha the founder of the Buddhist tradition has not paid so much attention to economic problems. But he has negated the inequality of distribution of earned wealth among family members, labours, and landlords etc. Moreover, in his *Aṣṭāṅgamārga* he has propounded the theory '*Samyagājīva*' which means that one should earn his livelihood properly and honestly and the earned wealth must be distributed properly honestly among family-members, workers and landowners.¹³

Gandhian Economics

Gandhian economics has emphasised the small scale industries. Mahatma Gandhi has refused the large scale industries. In his opinion large scale industries should be allowed to work simply for those commodities which cannot be produced in the small scale industries. His small scale - industries have been named in Hindi as following -

- i) Laghu Udyoga - Because they are small scaled.
- ii) Grāma Udyoga - The small scale industries are normally established in the villages. So they are called as Grāma Udyoga.

- iii) **Kutira Udyoga, Cottage Industries.** The Gandhian small scale industries are generally found in the small cottages of different villages.

These names show that Gandhian small scale industries are related with poor villagers not with the wealthy capitalists. Gandhiji has laid stress on the small scale industries with a view to the following removals -

- 1) Removal of Unemployment.
- 2) Removal of Exploitations.
- 3) Removal of Dependence.

1. Removal of Unemployment - The population of India is increasing day by day which has badly influenced the whole nation by creating the problem of unemployment. In the large scale industries it is seen generally, that a big machine works as much as fifty or sixty labours can do, though it needs only four or five operators. As a result of that, remaining persons are bound to suffer from unemployment. So Gandhiji has emphasised the small scale industries which may be established by the different families of villages and the family members will be employed in their own industries. In this way the problem of unemployment will be removed.

2. Removal of Exploitation - The unemployed poor labours being compelled by their economic conditions, go to capitalists the owners of large scale industries. In the large scale industries labours are exploited by the owners of factories. The labours are forced to work as much as they can, though they are very low paid for that. Due to their exploitation labours become poor and poor while the owners of factories become rich and rich day by day. According to Gandhiji, when labours will be employed in their own small scale industries in their villages, they will not be compelled to go to the capitalists and as result of that they will be saved from exploitation.

3. Removal of Dependence - According to Gandhiji the political dependence includes in itself social dependence, economic dependence, academic dependence etc. Therefore, for a country,

independence means all sorts of independence. The small scale industries provide economic independence including following factors.

a) Independence of employment - No body (labour) has to depend on wealthy capitalists in order to have employment.

b) Freedom from Exploitation - When labours are employed in their own small scale industries they become free from exploitation.

c) Free availability of necessary commodities - People produce things according to their own necessities. So they have not to depend on others for their necessary items.

d) Raw materials in own villages - Gandhiji has advised that small scale industries may be established in the villages according to the raw-materials available there so that industries may not be depended on others for raw-materials.

Bhūdāna Yajña

Bhūdāna Yajña is one of the strong pillars on which 'Sarvodaya' is based. Theory of Sarvodaya i.e. development of all, has been established by Mahatma Gandhi. Ācārya Vinoba Bhave the spiritual successor of Mahatma Gandhi has established the theory of Bhūdāna Yajña and Samagra Dāna in his own way.

The term 'Bhūdāna Yajña' consists of three words - Bhū, means land, but Dāna and Yajña do not have their popular meanings. They have special meanings given by Vinoba Bhave.

'Dāna' - The 'Dāna' of Bhūdāna Yajña means neither the dāna of Vedic tradition, nor the charity of Christianity, nor the Jakāt of Islamic tradition. It is not based on kindness. It is a transfer of right (Sampradāna). In the marriage ceremony the word Dāna does not symbolise kindness, in the same way Dāna of Bhūdāna Yajña does not represent any type of kindness According to Vinoba Bhave the so called owner of land is not truly its owner just like the father of a bride who is never treated as her master. He is simply the patron as the father is guardian of his daughter. As a father hands over his daughter to an able person (Supātra), a landowner should hand over

the right of land to an able person. The ownership or the mastership should not be imagined in this concern. The land owner should never think that after being kind enough to the landless person he is giving his land. But he should assume that he is returning the right of land to the real owners.

Meaning and Aim of Bhūdāna Yajña

As Vinoba Bhave has propounded, a man is born with three institutions -

- a) The unmeasurable universe of which a man is a part.
- b) The society in which he is born and which consists of parent, brother, sister, neighbor etc.
- c) An organised form of body, mind and intellect.

Human life is conducted by the synthetic form of the three given above. Vinoba Ji, in order to clarify this, has discussed meanings or aims of Bhūdāna Yajña.

(a) Compensation of loss (Kṣayapurti) - Nature loses something due to the activities done by man in his daily life. So the first meaning or aim of Bhūdāna Yajña is to compensate that loss. The improper division of land and decline of cottage industries cause poverty, unemployment and illiteracy which damage the society. The Bhūdāna Yajña compensates the social loss by equal distribution of land, establishment of cottage industries and basic education. One man ownership of land fails to utilise the land properly. The Bhūdāna Yajña tries for the proper utilisation of land.

(b) Purification (Śudhikaraṇa) - Many people take water from well and use water for different purposes which causes dirtiness around the well. The Bhūdāna Yajña inspires all persons to remove that dirtiness. In the same way there are so many activities in society which result into pollution and the Bhūdāna Yajña provides inspiration and instruction for making the society neat and clean. Moreover the Bhūdāna Yajña creates ideas of love and non-violence in the minds of land distributors, which make their hearts purified.

(c) Organisation - Practice of direct works like farming of cotton, spinning, production of cloth have been accepted by the Bhūdāna Yajña. The Bhūdāna Yajña also instructs that one should pay services to parent, teacher (Guru), neighbors etc. so that social-loan may be discovered.

Steps of Bhūdāna Yajña

According to Vinoba Bhava there are five steps or stages of Bhūdāna Yajña.

- i) Suppression of Disquietude (Aśānti Damana)
- ii) Attention Attracted (Dhyānākaraṇa)
- iii) Creation of Faith (Niṣṭhā Nirmāṇa)
- iv) Land Offering on large scale (Vyāpaka Bhūmi Dāna)
- v) Land Revolution (Bhūmi Krānti)

i) Suppression of Disquietude - When there was a clash between poor people and landowners of Telangana, Bhūdāna Yajña was begun there and that resulted into the control of that situation. People were influenced by Bhūdāna Yajña. That was its first step which was named as Suppression of Disquietude.

ii) Attention Attracted - In the fearful clash of Telangana so many persons were killed. In that situation of violence the beginning of Bhūdāna Yajña a symbol of non-violence was really a wonderful thing. And when Vinoba Bhava was marching towards Delhi he saw the improving process of Bhūdāna Yajña at different places. That development of Bhūdāna Yajña influenced the whole country. Thus the second stage was called as "Attention Attracted".

iii) Creation of faith - After that it was felt essential to create faith in the hearts of the persons related with Bhūdāna Yajña, so that they might participate with full confidence in that. So in the Sarvodaya conference held at Sevapuri it was decided to get 25 Lacs acres of land in the whole country and 5 Lacs acres of land in U.P. as dāna. Both of the plans came to be successful which caused confidence in the workers of Bhūdāna Yajña.

iv) Land Offering on large scale - Further an idea of getting one sixth of total land of the country came before the workers of Bhūdāna Yajña so that all landless persons of country might get lands. There also came a second idea of getting one sixth of the land of a particular province by working there honestly and laboriously, so that an example might have been set before the people of other provinces. With that intension, workers of Bhūdāna Yajña tried their best to achieve one sixth of the total land of Bihar i.e. 32 Lacs acres of land of Bihar, but only 26 Lacs acres of land they could get as Dāna. Though that total land offered in Bihar was 9 Lacs acres lesser than expectation, it was wonderful that 3 Lacs people offered their lands there. So that step was named as “Land Offering on large scale.”

v) Land Revolution - The removal of individual right on land was thought to be the success of Land-Revolution. Individual right on land was considered to be finished in all villages, so that village itself might be the owner of the total land of village. That was the idea of converting the whole village in one family (Grāma Parivāra). When Vinoba Bhave was passing through Karaputa village of Orisa, village offering revolution (Grāma Dāna Āndolana) was enhancing fastly. Moreover 500 villages were offered in Orisa upto 1955, among which 400 villages were offered in the Karaput district only. In this way the Bhūdāna Yajña reached on its 5th stage named “Land - Revolution (Bhūmi-Krānti).

Again the analysis of Bhūdāna Yajña according to Vinoba Bhave may be seen in the following way -

“Bhūmidāna is for the persons who are poor and landless, who know and like agriculture and want to do farming but they have no alternative except ploughing and labouring in other's land, Bhūdāna is a means to decay of mastership by removal of individual right on land. Like air and water, land is also under the ownership of the Great Master God and all have equal rights to work with their own hands. With this idea in his heart the donator, in order to finish his ownership on land, will offer his land so that land of village will be under the possession of the village itself. Thus village ownership of land (Bhūmi Kā Svāmikarāṇa) will be established. The aim and object

of Bhūdan Yajña will be to organise village industries based on non-injurious society through the village ownership of land”¹⁴

Philosophical Foundation of Bhūdāna Yajña

According to Vinoba Bhave, in India spiritual knowledge or the thinking about soul has been coming from ancient time, but these days it has become very narrow though saints have discussed it very widely. We Indian people are unable to understand it. Animals are limited to themselves because they do not have any knowledge of soul. They quarrel among themselves for food. The children are found very simple and pure hearted but they do not understand their purity and they also quarrel. But the adults should understand the extension of their hearts. Bhūdāna Yajña lays stress upon the extension of soul. One should think not about own self only but about others also. Everybody should try to live for others. Bhūdāna Yajña is based on the theory.

“Sabai bhūmi Gopāl kī”

That the total lands belong to Gopāla or Kṛṣṇa. Moreover in the Vedic tradition it has been propounded.

“Isā vāsyā midam sarvam yatkinca jagatyam jagat”¹

Tena tyaktena bhunjithā mā grdhah Kasyasvidhanam”¹¹

It means, whatever there is in this world that is a form of God and that belongs to God. He only is the Master. Therefore a man should be satisfied with what he gets as kind gift from him. In the Bhūdāna Yajña also the individual right on land or on any other property does not have any meaning. It accepts that whatever there is in this world that belongs to all because that belongs to God.

Total Offer (Samagra Dāna)

Total offer or Samagra Dāna means village ownership (Grāmikaraṇa) of land. Vinoba Bhave has assigned -

“I do not want small family, therefore I am ready to organise big families. I like to convert the whole village in one family”¹⁵

According to Samagradāna, the land will be utilised by the individuals but the ownership will belong to the Village - Organisation (Grāma Pancāyat). One family will get only 5 acres of land and the remaining lands will be common to all. Expenditures concerning tax, education, medicine etc. will be paid from collective production. The economic management of public work will be done by collective land and production. After every eight or ten years land will be distributed according to the number of families. The areas of land allotted to different families will be increased or decreased according to the ratio of family members. The right of land for the allotted period will belong to the person to whom land has been allotted. People will work in the collective land, having thought of their own. There will be no mastership of land. Every body should feel the land of his own, without any idea of its mastership as a father feels affection with his children though he does not have any feeling of mastership on them.

In the management of total offer (Samagra Dāna) cottage industries will be established so that people may have all things of their use in the villages, all may have employments and no body will be compelled for exploitation by going to the large scale industries. There will be a single standard of education in all villages. In the morning children while in the evening adults will be taught for one hour. *The hand-craft and spiritual teaching will have equal importance in education.* The villagers will be trained to be free from taking wine and smoking. The loan will be given by the village not by some rich person. In the case of marriage, economic management will be done by the village so that father of bride will not take any personal loan.

According to Vinoba Ji Samagra Dāna has its four types of good results -

i) Economic Result, ii) Cultural Result, iii) Ethical Result and iv) Spiritual Result. The economic result will cause the economic development of village because the Samagra Dāna will bring economic revolution consisting of following factors -

a) In agriculture, attention will be paid to the necessity and amount of the things to be produced.

b) Sufficient efforts will be done for the improvement of agriculture.

c) External help as well as government help will be provided to agriculturists.

d) No body will have to take loan individually because economic management will be done by the village.

In this way *Gandhian Economy presents the positive from of economic non-violence.*

Aparigrah Paramo Dharmah*

Aparigrah is an ancient Indian economic theory. It has been discussed in both Vadic tradition as well as Śramaṇa tradition. According to Jainism it is one of the five great vows - Non-Violence (Ahimsā), Truth (Satya), Non-Stealing (Asteya), Celebacy (Brahmācarya) and Non-Hoarding (Aparigrah). These are co-existents and inter-dependants. Theoretically these have equal values. But in practice non-violence is well-known. The slogan - “*Ahimsā Paramo Dharmaha*” has been coming from ancient time. It has occupied an important place in Indian thinking. It is much more popular than Aparigraha. But as these are interlinked and interdependent, Ācārya Tulasi while travelling to Udayapur, has declared that both Ahimsā and Aparigraha have equal values. Ahimsā cannot be maintained without Aparigraha. Therefore both slogans - “**Ahimsā Paramo Dharmah**” and “**Aparigrah Paramo Dharmah**” should have been put together. Ācārya Mahāprajña has explained this idea under the following sub-headings -

i) Cause of Violence -

Non-Violence cannot be understood without knowing Non-Hoarding. Hoarding is the cause of violence. Desire, violence and hoarding are linked and they support one another. They run together. People do violence for his bodily pleasure and having land and other properties. The wealth cannot be earned without violence. So the hoarding has created economic inequality which has caused dissatisfaction in the society.

ii) Marx and Gandhi

Karl Marx and Mahatma Gandhi have tried to remove the economic inequality prevailing in the human life, so that human - beings may live a peaceful life. Karl Marx has emphasised on the *removal of personal right* while Mahatma Gandhi has payed importance to the *trusteeship*. But neither the removal of personal right nor the trusteeship has become successful for bringing economic equality. A family consisting of two members while some other family having ten members do not deserve equal properties. Moreover different persons have different earning capacities. So how can all people be put on the same economic level. The economic equality means to have the necessities of life i.e. food, cloths, house, medicine and education.

Aparigraha

The theory of Aparigraha propounded by Lord Mahāvīra is real way to creat economic satisfaction in the society. He has asserted neither to control over the quantities of useful commodities nor to earn less money but he has taught to control over desires. Because hording and violence run in the same circle.

Moreover, Ācārya Mahāprajña has assigned that though production and income on large scale and equality in distribution have been emphasised for economic development, economic control and desire control must be aided to it. Because **non-hoarding is the base of non-violence**.

References :

1. Artha ityeva sarveṣāṁ karmaṇāṁavyatikramah |
Na hryatearthena vartate dharmakāmāvitī śrutih || 12 ||
Kāsāyavasanaścānye śmaśrula hṛīsusarṁvritah |
Vidvāṁsaścaiva śāntāśca muktāḥ sarva parigrahaiḥ || 17 ||
Arthārthinah santi kecidapare svargakāṅkṣinah |
Kulapratyāgamāścaike svam svam dharmamanuṣṭitāḥ || 18 ||
Āstikā nāstikaścaiva niyatāḥ sanyame pare |
Aprajñānaṁ tamobhutaṁ praññānaṁ tu prakāśatā || 18 ||
Mahābhārata, Śānti Parva, chapter - 167

2. Yasyārthāstasya mitrāṇi yasyāthāstasya bāndhavāḥ |
Ysyārthāḥ sa pumāmllōke yasgārthāḥ sa ca panditah || 19 ||
Mahābhārata, Śāntiparva, Chapter - 8
3. Dharmah Kāmaśca svaragaśca harṣah krodhah śrutam damah |
Arthādetāni sarvāṇi pravartante narādhipah || 21 ||
Dhanātkulam prabhavati dhanād dharmah pravarate |
Nādhanasyāstyayaṁ loko na parah puruṣottam || 22 ||
Mahābhārata, Śāntiparva, Chapter - 8
4. An Enquiry into the nature and causes of wealth of nations.
5. Marshall, *Principles of Economics*, 8th Edition, p. 1.
6. Editorial, *Tīrthankara*, July 94/7.
7. - Ibid, July 94/6.
8. *Upāskadasāṅga sūttam*, Ist chapter, sūtra-47 *Jaina Ācāra*, p. 109.
9. Kaccitta vaṇijo rāstre nodvijanti karārditah |
Kriṇanto bahunālpēna Kāntārakṛtaviśvāmāh || 23 ||
Mahābhārata, Śānti Parva, Chapter - 89, sloka - 23.
10. Panyādhyakṣa sthala jalajanām nānāvidhānām panyānām sthala
pathavāripathīyātānām sārāfalavaridhāntaraṁ priyāpriyatām ca
vidhta || Kautilya *Arthasāstra* 2/16/1
11. Ibid, 2/19/11.
12. *Kuvalaya Mālā* - 57, 24-26.
13. *The Social and Political Strata in Buddhist Thought* (A Tibetan
Institute Publication)
14. *Bhūdāna Yajña-Kyā aur Kyon ?* p. 2.
15. *Bhūdāna Yajña - Kyon aura Kaise ?* p. 46.
- * Ācārya Mahāprajña, *Ahimsā Yātra*, p. 3-5, Year - 01, Number -
04, April, 2002.



विद्यापीठ के प्रांगण में

जैन अहिंसा और चिकित्सा जगत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का आधुनिक विकास

पार्श्वनाथ विद्यापीठ के सभागार में दि० २९.१२.०४ को अपराह्न ३.३० बजे से जैन अहिंसा और चिकित्सा जगत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का आधुनिक विकास नामक विषय पर एक संगोष्ठी का संस्थान की ओर से आयोजन किया गया। कार्यक्रम का प्रारम्भ मुनिश्री मनीषसागर जी म० सा० के मंगलाचरण से हुआ। प्रारम्भ में डॉ० श्री प्रकाश पाण्डेय ने प्रो० क्रोमवेल क्रोफोर्ड (हवाई विश्वविद्यालय, होनेलूलू) का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् पार्श्वनाथ विद्यापीठ के निदेशक प्रो० महेश्वरी प्रसाद ने अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्थान का परिचय दिया एवं इस संगोष्ठी के उद्देश्यों की चर्चा की।

मुख्य वक्ता के रूप में प्रो० क्रोफोर्ड ने अपने को पक्का जैन बतलाते हुए महावीर से लेकर वर्तमान युग तक अहिंसा के व्यवहारिक पक्ष की चर्चा करते हुए इसके सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला।

डॉ० प्रदीप जैन एवं डॉ० मधु जैन ने कहा कि चिकित्सा जगत् में हिंसा का जो भी प्रयोग किया जाता है, उसका उद्देश्य केवल मानव की रक्षा करना है और इस उद्देश्य से की गयी हिंसा को अहिंसा की कोटि में ही रखा जाना चाहिए।

डॉ० चूड़ामणि गोपाल ने कहा कि बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के उद्देश्यसे जानवरों पर किये जाने वाले हिंसात्मक प्रयोग हिंसा की कोटि में नहीं रखे जा सकते। उन्होंने अहिंसा को लोकाचार से जोड़कर इसे वैचारिक क्रांति के लिये महत्त्वपूर्ण बताया।

प्रो० वी०वी० मेनन ने कहा कि प्रमाद की अवस्था में ही हिंसा होती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत बेहतर लाभ के लिये ही कार्य किया जाता है। इसमें होने वाली हिंसा को अहिंसा की कोटि में इसी कारण रखा जा सकता है।

मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए प्रो० एस० लेले ने अहिंसा के व्यवहारिक पक्ष पर सुन्दर प्रकाश डाला। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में अमेरिका से पधारे डॉ० सुलेख जैन ने अहिंसा के प्रयोगात्मक पक्ष पर बल दिया। इस अवसर पर प्रो० क्रोफोर्ड को स्मृति चिन्ह एवं इमेरिटस प्रोफेसर का सम्मान पत्र भी भेंट किया गया।

इस अवसर पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कई प्राध्यापक तथा जैन समाज के कई गणमान्य व्यक्ति और शोध छात्र उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय एवं धन्यवाद ज्ञापन पार्श्वनाथ विद्यापीठ के संयुक्त मंत्री श्री इन्द्रभूति बरड़ने किया।



जैन जगत

अम्बाला : आचार्य विजयवल्लभसूरि स्वर्गारोहण अर्ध शताब्दी वर्ष का समापन अक्टूबर १५-१७ को अम्बाला में वर्तमान गच्छाधिपति आचार्य श्रीमद् विजयरत्नाकर सूरि के पावन सानिध्य में धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। तीन दिन चले इस समारोह में विभिन्न धार्मिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए।

रीवा विश्वविद्यालय में जैन रिसर्च सेन्टर हेतु भवन का शिलान्यास

आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज एवं उनके शिष्य मुनिश्री प्रमाणसागर जी महाराज की प्रेरणा और कुलपति प्रो० ए०डी०एन० बाजपेयी के उदार सौजन्य से पिछले दिनों अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा में जैन रिसर्च सेन्टर की स्थापना के लिये भवन निर्माण हेतु नींव रखी गयी।

पुस्तक लोकार्पण

१७ अक्टूबर को अहमदाबाद में स्व० हीरालाल कापड़िया की पुस्तक **जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास** भाग १-३ के द्वितीय संस्करण (संपा० एवं संशोधक आचार्य मुनिचन्द्रसूरि) का लोकार्पण किया गया।

सूरत में आयोजित श्रावकाचार संगोष्ठी में डॉ० कपूरचन्द जैन, खतौली द्वारा सम्पादित **प्राकृत एवं जैन विद्या शोध संदर्भ** के तृतीय संस्करण का लोकार्पण किया गया। इस संस्करण में भारतीय विश्वविद्यालयों से हुए ११०० जैन शोध प्रबन्धों तथा विदेशी विश्वविद्यालयों से हुए १३१ शोध प्रबन्धों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

२० अक्टूबर को श्रवणबेलगोला में डॉ० नन्दलाल जैन, रीवा द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनूदित एवं डॉ० अशोक जैन द्वारा सम्पादित **षट्खण्डागम की ध्वला टीका** का लोकार्पण किया गया। इसी समारोह में पं० फूलचन्द शास्त्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाशित पुस्तक **पंडितजी** का भी लोकार्पण हुआ।

पूज्य प्रसाद जी गणेश वर्णी जी की १३०वीं जयन्ती समारोह सम्पन्न

श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के प्रांगण में विगत दिनों पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी की १३०वीं जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर पर आयोजित कार्यशाला में बोलते हुए प्रो० फूलचन्द जी जैन, अध्यक्ष - जैन दर्शन विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत

विश्वविद्यालय, ने उन्हें जैनियों का गांधी बतलाया। इस कार्यशाला में श्री विमल कुमार जैन, डॉ० अरविन्द त्रिपाठी, श्री सुरेन्द्र जैन, डॉ० सुश्री निर्मला जैन, डॉ० मुन्नी पुष्पा जैन आदि ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए वर्णीजी के अविस्मरणीय योगदान का स्मरण किया।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि- पुरस्कार वितरण समारोह एवं

आचार्य हेमचन्द्रसूरि- वार्षिक व्याख्यानमाला का प्रथम भाषण सम्पन्न

नई दिल्ली २७ नवम्बर : भोगीलाल लहेरचंद प्राच्य विद्या संस्थान, दिल्ली एवं जसवंत धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा प्रवर्तित आचार्य हेमचन्द्रसूरि पुरस्कार का समर्पण समारोह २६ नवम्बर २००४ को प्रातः १०.३० बजे इंडिया इण्टरनेशनल सेन्टर, मैक्समूलर मार्ग के एनेक्सी सभागार में आयोजित किया गया। ज्ञातव्य है कि २००४ का यह पुरस्कार जर्मन विद्वान् प्रो० विलियम वी० बोली को प्रदान करने की पूर्व में घोषणा की जा चुकी थी। सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ० लक्ष्मीमल सिंघवी ने प्रो० बोली का स्वागत करते हुए उन्हें पुरस्कार राशि एवं आचार्य हेमचन्द्रसूरि की स्वर्ण विभूषित प्रतिमा भेंट की। इस अवसर पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि व्याख्यानमाला के प्रथम भाषण का भी आयोजन किया गया, जिसका विषय था - “भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध की चारित्रिक विशेषताओं का विवेचन” जिसमें प्रो० बोली ने अपना विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया।

अभिनन्दन

डॉ० श्रीमती राका जैन, लखनऊ को दि० २५ अक्टूबर २००४ को गुरुगोपालदास वरैया स्मृति पुरस्कार - २००३ से सम्मानित किया गया।

डॉ० फूलचन्द जैन, रीडर एवं जैनदर्शनाचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी को विश्वविद्यालय की कार्यसमिति द्वारा प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत किया गया।

डॉ० ऋषभचन्द जैन ‘फौजदार’, प्राध्यापक - प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली को बिहार सरकार ने उक्त संस्था के निदेशक पद पर नियुक्त किया है।

उक्त विद्वानों को उनके अकादमिक उपलब्धियों के लिये पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से हार्दिक अभिनन्दन।

स्मृति शेष

दि० जैन समाज के शीर्षनेता एवं पत्रकारिता के शिखरपुरुष साहू रमेशचन्द्र जैन का ७९ वर्ष की आयु में दि० २२ सितम्बर २००४ को दिल्ली में निधन हो गया। आप

९२ : श्रमण, वर्ष ५५, अंक १०-१२/अक्टूबर-दिसम्बर २००४

पिछले कुछ समय से गम्भीर रूप से अस्वस्थ थे। आपका जन्म १५ अगस्त १९२५ ई० को नजीबाबाद में हुआ। आप सुविख्यात टाइम्स ऑफ इण्डिया समाचार समूह के कार्यकारी निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी तथा भारत सरकार के भारतीय जन संचार संस्थान के अध्यक्ष रहे। पत्रकारिता में दीर्घ अनुभव के कारण इन्हें इस क्षेत्र का शिखरपुरुष कहा जाता था। पत्रकारिता में उनके उत्कृष्ट योगदान पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी ने उन्हें अपनी सर्वोच्च मानद उपाधियों से सम्मानित किया। आप अपने पीछे पत्नी और दो पुत्र छोड़ गये। आपके निधन से जैन समाज को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति प्रायः असंभव है।

बम्बोरा, उदयपुर निवासी सुश्रावक श्री कन्हैयालाल जी धींग का ९ अक्टूबर २००४ दिन शनिवार को हृदयाघात से निधन हो गया। आप अपने पीछे ज्येष्ठ भ्राता, भाभी, पत्नी, तीन पुत्र, दो पुत्रियों का भरा-पूरा परिवार छोड़ गये हैं।

पार्श्वनाथ विद्यापीठ की ओर से उक्त दिवंगत महानुभावों को हार्दिक श्रद्धांजलि।



साहित्य सत्कार

स्वतंत्रता संग्राम में जैन (प्रथम खण्ड), लेखक - डॉ० कपूरचन्द जैन एवं डॉ० श्रीमती ज्योति जैन; प्रकाशक- प्राच्य श्रमण भारती, १२/ए, जैन मंदिर के निकट, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर, २५१००१ (उ०प्र०); प्रथम संस्करण २००३ ई०, पक्की बाइंडिंग; आकार - रायल; पृष्ठ ५२+४२५+ अनेक चित्र; मूल्य २००/- रुपया मात्र।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम १८५७ ई० से लेकर १९४७ में स्वतंत्रता प्राप्ति तक के ९० वर्षों की दीर्घावधि में जाति-पांति, गरीब-अमीर के भेद-भाव को त्याग कर देश के स्वाधीनता के लिये अपना घर-परिवार आदि का उत्सर्ग कर देने वालों की गिनती कर पाना कठिन है। इसमें भाग लेने वाले किसी लाभ की भावना से नहीं बल्कि देश को स्वतंत्र कराने की भावना से जुड़े रहे। उनके द्वारा किये गये त्याग एवं बलिदान के फलस्वरूप देश स्वतंत्र हुआ। इस संग्राम में भाग लेने वालों में बड़ी संख्या में जैन धर्मावलम्बी भी थे।

भारत सरकार तथा विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने स्वतंत्रता-संग्राम सेनानियों पर विभिन्न पुस्तकों को प्रकाशित किया है। इसी प्रकार विभिन्न जातीय संगठनों ने भी इस विषय पर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, किन्तु जैन समाज की स्वतंत्रता आन्दोलन में क्या भूमिका थी, इस बारे में कोई प्रामाणिक पुस्तक नहीं देखने में आयी। इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया युवा उत्साही विद्वान् डॉ० कपूरचन्द जैन और उनकी धर्मपत्नी डॉ० ज्योति जैन ने और उसे बहुत अंशों में पूरा कर दिखाया जो प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर के सहयोग से हमारे समक्ष प्रस्तुत है।

यह ऐतिहासिक महत्त्व की पुस्तक मुख्य रूप से दो खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में २० अमर जैन शहीदों का जीवन परिचय है। द्वितीय खंड में वर्णक्रमानुसार जैन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का परिचय दिया गया है। पुस्तक के अन्त में सात परिशिष्ट भी दिये गये हैं। परिशिष्ट एक में संविधान सभा और जैन, परिशिष्ट में दो आजाद हिन्द फौज और जैन, परिशिष्ट तीन में स्वतंत्रता संग्राम और जैन पत्रकारिता की चर्चा है। इसी प्रकार आगे के तीन परिशिष्टों में तीन विशिष्ट आलेख हैं। अंतिम परिशिष्ट में ब्रिटिश शासन के समय लिखा गया जब्तशुदा लेख - भगवान् महावीर और महात्मा गांधी दिया गया है। पुस्तक के अन्त में ११ पृष्ठों की विशाल संदर्भ ग्रन्थ सूची दी गयी है।

अपने इस ऐतिहासिक दस्तावेज के माध्यम से लेखक ने स्वतंत्रता सेनानी जैनों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है। इसे पूर्ण करने में उन्हें कितना श्रम करना पड़ा, यह इस पुस्तक के आकार-प्रकार को देख कर भली-भांति समझा जा सकता है। श्रेष्ठ आर्ट पेपर पर मुद्रित सम्पूर्ण ग्रन्थ में अनेकों श्वेत-श्याम चित्र दिये गये हैं जो इसकी महत्ता को द्विगुणित करते हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में संविधान सभा के सभी सदस्यों का ग्रुप फोटो दिया गया है, जो स्वयं अपने आप में अनूठा है।

महात्मा गांधी के निकट सहयोगी और जैन विद्या के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय, रायपुर-छत्तीसगढ़ के सुविख्यात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी खरतरगच्छीय यति जतनलाल का इस पुस्तक में उल्लेख न आना आश्चर्यजनक लगा। आशा है लेखकद्वय इस पुस्तक के द्वितीय खण्ड में उन्हें भी स्थान देने का प्रयास करेंगे।

ऐसे सुन्दर स्मारक ग्रन्थ के लेखक और उसे अत्यधिक व्यय कर प्रकाशित करने वाले प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं। यह पुस्तक प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिये पठनीय और मननीय है। आशा है इसके आगे के भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

सम्पादक

भारतीय संविधान विषयक जैन अवधारणायें, लेखक - डॉ० कपूरचन्द जैन; प्रकाशक - प्राच्य श्रमण भारती, १२ए - प्रेमपुरी, जैन मंदिर के निकट, मुजफ्फरनगर २५१००१ (उ०प्र०); प्रथम संस्करण २००३ ई०; आकार - डिमाई; पृष्ठ ५२+८ चित्र; मूल्य २५/- रुपये।

भारतीय संस्कृति एक संश्लिष्ट संस्कृति है। इसके विकास में वैदिक, जैन और बौद्ध संस्कृतियों के साथ-साथ इस्लाम और सिख संस्कृति का भी योगदान रहा है जो आज भी न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र देखा जा सकता है। जैन परम्पराओं एवं सिद्धान्तों ने भारतीय समाज को समय-समय पर नये आयाम प्रदान किये हैं। भारत के राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में जैन समाज की प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो अविच्छिन्न रूप से आज चली आ रही है।

डॉ० कपूरचन्द जी दिगम्बर परम्परा के सुप्रसिद्ध युवा विद्वान् और समर्पित लेखक हैं। उनकी लेखनी से अब तक कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुके हैं। प्रस्तुत लघु पुस्तिका में उन्होंने भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधानों पर जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रभाव, जैन समाज के लोगों का संविधान निर्माण में योगदान, राष्ट्रीय प्रतीकों में जैनत्व के प्रतिबिम्बों तथा नागरिकों के मूल अधिकारों एवं कर्तव्यों में सन्निहित जैन जीवन पद्धतियों के मूलभूत तत्त्वों का समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत कर अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के लेखक और उसके प्रकाशक दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

सम्पादक

पटेरियाजी गढाकोटा दीपिका, लेखक - डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागन्दु'; प्रकाशक - श्री भागचन्द्र इटोरिया सार्वजनिक न्यास, स्टेशन रोड, दमोह (मध्यप्रदेश); प्रथम संस्करण; आकार - डिमाई; पृष्ठ - ४०; मूल्य - १०/- रुपया मात्र।

मध्यप्रदेश स्थित बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनेक दिगम्बर अतिशय क्षेत्र विद्यमान हैं, जिनमें अतिशय क्षेत्र पटेरिया गढाकोटा भी एक है। इस क्षेत्र के प्रायः सभी मंदिर १८वीं - १९वीं शती के हैं। इनका निर्माण स्थानीय राजमान्य श्रेष्ठियों द्वारा हुआ है। पटेरिया गढाकोटा स्थित पार्श्वनाथ जिनालय का भी निर्माण इसी शृंखला की एक कड़ी है। विद्वान् लेखक ने इस मंदिर में अवस्थित सभी सलेख प्रतिमाओं (११ प्रतिमाओं) का मूल पाठ और मंदिर का इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है तथा साथ ही यहां के ६ अन्य जैन मंदिरों का भी विवरण दिया है। वस्तुतः यह एक प्रकार से पटेरियाजी तीर्थ का गाइड बुक कहा जा सकता है। लेखक के इस उपयोगी ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर इस क्षेत्र में अवस्थित अन्य तीर्थों पर भी इसी प्रकार संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक पुस्तकें लिखे जाने की आवश्यकता है। ऐसे उपयोगी पुस्तक के प्रणयन के लिये विद्वान् लेखक एवं उसे प्रकाशित कर अल्प मूल्य में वितरित करने हेतु प्रकाशन संस्था दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

सम्पादक

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा का अतीत, लेखक - डॉ० त्रिलोक चन्द कोठारी; प्रकाशक - त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान, कोटा, राजस्थान; प्रथम संस्करण - २००४ ई; आकार - डिमाई; पृष्ठ - १६+१६८; पक्की बाइंडिंग; मूल्य - २००/- रुपये।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा देश की पुरातन सामाजिक एवं धार्मिक संस्था रही है जो सन् १८९५ में अस्तित्व में आयी। १९वीं शती के उत्तरार्ध में देश में उत्पन्न राष्ट्रीय पुनर्जागरण से प्रभावित हो कर दिगम्बर समाज के कर्णधारों ने इस संगठन को जन्म दिया। मध्यममार्गी इस संगठन ने जहां एक ओर पुरातन अतिवादी विचारधारा को अस्वीकार किया वहीं नवीन प्रतिक्रियावादी विचारों का विरोध किया। यद्यपि इस संगठन के विरोधस्वरूप समय-समय पर विभिन्न संगठन बने और एक समय ऐसा भी आया कि यह सर्वप्राचीन संगठन इतिहास बन गया, फिर भी अपने स्थापना काल से लेकर १९८० ई० तक ८५ वर्षों के दीर्घावधि में इस संगठन ने जो कार्य किया वह अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। पुस्तक के लेखक डॉ० कोठारी स्वयं इस संस्था से लम्बे समय तक जुड़े रहे हैं, फिर भी उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा कहीं भी पक्षपातपूर्ण रवैया नहीं अपनाया है और यही इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है। दिगम्बर समाज की सर्वप्राचीन इस संस्था का इतिहास प्रस्तुत कर डॉ० कोठारी ने ऐसा महत्वपूर्ण कार्य

सम्पन्न किया है जिसे जनमानस में लम्बे समय तक याद किया जायेगा। पुस्तक की साज-सज्जा अत्यन्त आकर्षक तथा मुद्रण अत्यन्त मनोरम है। डॉ० कोठारी की इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी समाज भी अपने संगठनों का इसी प्रकार से अपन्ना-अपना इतिहास प्रस्तुत करेंगे, ऐसी आशा है।

सम्पादक

सेठ मोतीशाह, लेखक - डॉ० रमनलाल ची० शाह; प्रकाशक - श्री मुम्बई जैन युवक संघ, ३८५, सरदार वी०पी० रोड, रसधारा कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, मुम्बई ४००००४; तृतीय संस्करण, फरवरी २००२ ई०; आकार - डिमाई; पृष्ठ १०+५०; पक्की बाइंडिंग; मूल्य - ३०- रुपये मात्र।

भायखला, मुम्बई स्थित भव्य एवं विशाल जिनमंदिर के निर्माता, शत्रुंजय पर्वत की खाई को पाटकर उस पर भव्य जिनालय का निर्माण कराने वाले खरतरगच्छीय सुश्रावक श्रेष्ठी मोतीशाह नाहटा का विस्तृत जीवनपरिचय वर्षों पूर्व स्व० मोतीचन्द गिरधरभाई कापड़िया द्वारा गुजराती भाषा में लिखा गया था। उसी पुस्तक के आधार पर श्री रमन भाई ने साधर्मिक बन्धुओं के आग्रह से संक्षिप्त रूप में (गुजराती भाषा में) प्रस्तुत पुस्तक तैयार किया है। इसकी लोकप्रियता का सहज उदाहरण है इसका तृतीय संस्करण के रूप में प्रकाशित होना। लेखक और प्रकाशक दोनों से यह अनुरोध है कि वे इस महत्वपूर्ण पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित करें ताकि हिन्दी भाषा-भाषी जन भी अपने इस महान् पूर्वज के गौरव गाथा की जानकारी प्राप्त कर उससे प्रेरणा ले सकें।

सम्पादक

सकारात्मक अहिंसा : शास्त्रीय और चारित्रिक आधार, लेखक - श्री कन्हैयालाल लोढ़ा, प्रकाशक - प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ सं० ३६+२१७, मूल्य - २००/- रुपये।

जैनधर्म के प्रख्यात् विद्वान् श्री कन्हैयालाल जी लोढ़ा द्वारा लिखित एवं प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित उक्त पुस्तक सकारात्मक अहिंसा के शास्त्रीय और चारित्रिक आधार को प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में लेखक ने अहिंसा के सकारात्मक स्वरूप में करुणा, सेवा, सहायता, वात्सल्य, अनुकम्पा, मैत्रीभाव आदि मूल्यों का न केवल सम्यक्तया समावेश किया है अपितु उनके शास्त्रीय उद्धरणों को भी प्रस्तुत किया है। जैन दर्शन का केन्द्रीय सिद्धान्त अहिंसा शाब्दिक दृष्टि से चाहे नकारात्मक हो लेकिन उसकी अनुभूति सदैव ही सकारात्मक रही है। सामान्यतया दया, दान, करुणा, वात्सल्य आदि को पुण्यास्त्रव और पुण्यबंध का हेतु माना जाता है किन्तु

ये मुक्ति-प्राप्ति के हेतु भी हैं, अतः उपादेय हैं। इसी लिये लेखक ने सकारात्मक अहिंसा को ही धर्म माना है और अपने मन्तव्य की पुष्टि में सो धम्मो जत्थ दया आदि शास्त्रीय उद्धरणों को प्रस्तुत किया है। विद्वान् लेखक ने बार-बार यह प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है कि अहिंसा का अर्थ मात्र हिंसा का निषेध नहीं अपितु सकारात्मक और भावात्मक प्रवृत्ति के रूप में भी अहिंसा हमारे लिए उपादेय है। उन्होंने करुणा को त्याज्य मानने का विरोध करते हुए पुण्यबंध के कारण सकारात्मक अहिंसा के निषेध को अनुचित माना है। पुस्तक को जैन धर्म के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् डा० सागरमल जैन की सशक्त 'भूमिका' और भी प्रासंगिक बना देती है। पुस्तक की भाषा प्रांजल और सुबोधगम्य है। यह पुस्तक शोधार्थियों के साथ-साथ सामान्य ज्ञान पिपासुओं के लिए भी अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगी।

डा० श्रीप्रकाश पाण्डेय

साभार

पुनीत प्रवज्याना पावन पये (गुजराती), संपा० आचार्य विजय योगतिलक सूरिजी म०सा०; प्रकाशक - संयम सुवास, C/o सेठ जमनालाल जीवतलाल, जूनागंज बाजार, भाभर ३८५३२० (गुजरात); आकार- डिमाई, पृष्ठ ४+४९; अमूल्य।

मुम्बईवासी मध्यभारत के दिगम्बर जैन (मुम्बईवासी मध्यभारत के दिगम्बर जैनों की डायरेक्टरी), प्रस्तुति - श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन, प्रकाशक - सन्मति ट्रस्ट, नरेन्द्र सदन, ४ माला, ३६डी, मुगभाट क्रासलेन, मुम्बई - ४००००४, आकार- डिमाई, पृष्ठ - ९६, मूल्य - १००/- रुपया मात्र।

प्रवचन प्रतिबिम्ब, प्रवचनकार - आचार्य सोमसुन्दरसूरि; संपा० - श्री मगनलाल परमार; प्रकाशक - श्री जैन संघ पेढी; सुनारवाड़ा, सिरौही, राजस्थान ३०७००१; आकार - डिमाई; पृष्ठ - ३२; मूल्य - पठन-पाठन।

वीर प्रभुनां वचनो, भाग- १, लेखक- डॉ० रमनलाल ची० शाह; प्रकाशक- श्री मुम्बई जैन युवक संघ, ३८५, सरदार वल्लभभाई पटेल रोड, मुम्बई ४, द्वितीय आवृत्ति २००१; आकार - डिमाई; पृष्ठ - ८+१५९; पक्की जिल्द बाइंडिंग; मूल्य- ८०/- रुपया मात्र।

जिनतत्त्व, भाग - ५, लेखक - डॉ० रमनलाल ची० शाह; प्रकाशक, पूर्वोक्त; द्वितीय आवृत्ति २००१ ई०; आकार-डिमाई; पृष्ठ ८+१२८; मूल्य- ५०/- रुपया मात्र।

अनुसंधान २३, संपादक - आचार्य विजय शीलचन्द्रसूरीश्वर जी; प्रकाशक कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य नवम् जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षण निधि,

९८ : श्रमण, वर्ष ५५, अंक १०-१२/अक्टूबर-दिसम्बर २००४

अहमदाबाद; प्राप्ति स्थान - आचार्यश्री विजयनेमिसूरि जैन स्वाध्याय मंदिर, १२, भरत बाग, जैन नगर, नवा शारदा मंदिर रोड, अहमदाबाद; आकार - डिमाई; पृष्ठ ४+९०; मूल्य - ५०/- रुपये मात्र।

पुनीत प्रवज्याना पावन पथ, संपादक - आचार्य विजय योगतिलकसूरि जी म०सा०, प्रकाशक - संयम सुवास C/o सेठ जमनलाल जीवतलाल, जूनागंज बाजार, भाभर - ३८५३२०, गुजरात; प्रथम संस्करण वि०सं० २०६०; आकार - डिमाई; पृष्ठ - ४+४६; मूल्य - स्वाध्याय।

श्रीकल्पसूत्रम्, महोपाध्याय धर्मसागरगणिविरचित **किरणावलीवृत्ति** युक्त; सम्पादक - मुनि वैराग्य रतिविजय एवं मुनि प्रशमरति विजयजी म०सा०; संशोधक - आचार्य विजयदानसूरि; प्रकाशक - श्री झालावाड़ जैन श्वे० मूर्तिपूजक तपागच्छ संघ ट्रस्ट, सुरेन्द्रनगर, गुजरात के सहयोग से प्रवचन प्रकाशन, पूना; द्वितीय संस्करण वि०सं० २०५९; आकार - पोथी; पृष्ठ २४+४४४; मूल्य - १५०/- रुपया मात्र।

तपा-खरतर भेद, विवेचक - मुनि हितवर्धन विजय गणि; प्रकाशक - कुसुम अमृत ट्रस्ट, शांतिनगर, अलकापुरी, वापी (वेस्ट) ३९६१९१; आकार - डिमाई; पृष्ठ १९२; पक्की बाईडिंग; मूल्य - ५०/- रुपया मात्र।

Jinendra Stavana (Sanskrit Invocatory Verses from Jaina Inscriptions of Karnataka), Edited by Prof. Nagarajaiah, Hampa; Published by National Institute of Prakrit Studies and Research, Dhavala Tirtham, Sravanbelagola - 573135, Dt. Hassan, Karnataka - INDIA, Size - Dimy, Pages xvi + 48, Ptales 8, Prise - Rs. 60/-

अस्तित्वनुं परोढ (हृदय प्रदीप षट्त्रिंशिका पर स्वाध्याय), स्वाध्यायकर्ता - आचार्य यशोविजयसूरि, विजयप्रद्युम्नसूरि एवं विजयरत्नसुंदरसूरि; प्रकाशक - पावापुरीतीर्थधाम ट्रस्ट मंडल, पावापुरी तीर्थधाम (राजस्थान); प्राप्ति स्थान - ॐकार सूरि आराधना भवन, गोपीपुरा, सुभाष चौक, सुरत ३९५००१; आकार - डिमाई; प्रकाशन वर्ष - वि०सं० २०६०; प्रथम संस्करण; पृष्ठ - १२+३१६; मूल्य - ७०/- रुपया मात्र।

जैन चित्रकल्पलता, संपा० और प्रकाशक - साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद १९४० ईस्वी; आकार- रायल, पृष्ठ- ५६+ अनेक श्वेत-श्यामवरंगीनचित्र।

नोट - यह दुर्लभ पुस्तक मुनिराज वैराग्यरतिविजय और मुनिराज प्रशमरतिविजय की प्रेरणा से शंखेश्वर पार्श्वनाथ आराधक ट्रस्ट की ओर से पार्श्वनाथ विद्यापीठ को प्राप्त हुई है।

प्रवचनसारोद्धार, मूल और गुजराती अनुवाद, संपा० और अनुवादक - श्रीविजय हेमभूषणसूरी जी म०सा० भाग - १-२, प्रकाशक श्री जी०के० कोठारी रेलीजियस ट्रस्ट, चन्दनवाला, आर०आर० ठक्कर मार्ग, रीजरोड, बालकेश्वर, मुम्बई ४००००५, आकार - डिमाई, पृष्ठ २०८+२००; मूल्य - सदुपयोग।

शक्तिनुं स्वीच बोर्ड, चिंतक - विजयजगवल्लभसूरि, संपा० - मुनि प्रशान्त वल्लभ विजय जी म०सा०; प्रकाशक - धर्मचक्र प्रभावक परिवार, मुम्बई-आगरा मार्ग, विल्होणी, नासिक, महाराष्ट्र, प्रकाशन वर्ष २००४, मूल्य - ७/- रुपया, पृष्ठ - ८+५०; आकार - पाकेट साइज।

मस्तीना समंदरमां, लेखक - श्री विजयजगवल्लभसूरि जी, प्रका० - धर्मचक्र प्रभावक परिवार, C/o महेशभाई शाह, शाह ब्रदर्स, लीमडी शेरी, पेटलाद, जिला - आणंद (गुज०), पाकेट साइज, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ - ५५; मूल्य १०/- रुपया।

श्री महावीर वंदनावली, सचित्र, प्राप्तिस्थान - सिद्धचक्र ग्राफिक्स, ए/ ११५, वी०जी० टावर, दिल्ली दरवाजा के बाहर, शाहीबाग रोड, अहमदाबाद; प्रथम संस्करण वि०सं० २०५०; पाकेट साइज; मूल्य - १०/- रुपया।

आत्मनिंदागर्भित परमात्मस्तवन, प्रवचनकार - श्री विजयहेमभूषणसूरि, प्रका० - श्री श्रीपाल नगर श्वे० मूर्तिपूजक देरासर उपाश्रय ट्रस्ट, १२, हार्कनेस रोड, बालकेश्वर, मुम्बई, प्रकाशन वर्ष वि०सं० - २०६०; आकार - पाकेट साइज, पृष्ठ ४+३६; मूल्य - स्वाध्याय।

जैनत्वनी नवकारवाणी, प्रवचनकार श्री विजयजगवल्लभसूरि; प्रका० - धर्मचक्र प्रभावक ट्रस्ट, विल्होणी, मुम्बई-आगरा मार्ग, नासिक (महाराष्ट्र); आकार-पाकेट साइज; पृष्ठ - ४८; मूल्य - १०/- रुपया।



श्रीमद्धनेश्वरसूरिविरचितं
सुरसुंदरीचरिअं
(द्वितीय परिच्छेद)

मुनिश्री विश्रुतयशविजयकृत
संस्कृत छाया, गुजराती और हिन्दी
अनुवाद सहित

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

२००४

શ્રીમદ્ધનેશ્વરમુનીશ્વરવિરચિતં

સુરસુંદરીચરિત્ર

દ્વિતીય પરિચ્છેદ

ગાહા :-

એસા હુ તાવ પલ્લી આવાસો નિગ્ધિણસ્સ લોચસ્સ ।
તુલ્હેવિ તસ્સ પહુણો અણન્ન સોજન્ન દય-કલિયા ॥૬૧॥

છાયા :-

એષા ખલુ તાવત્પલ્લી-આવાસો નિર્ઘ્નસ્ય લોકસ્ય ।
ત્ત્વમપિ તસ્ય પ્રભો રનન્ય-સૌજન્ય-દયા-કલિતઃ ॥૬૧॥

અર્થ :- આ પલ્લી-આવાસ નિષ્કુર લોકો માટે છે, અને તમે તેના સ્વામી, તમે તો અનન્ય સૌજન્ય અને દયાયુક્ત ! અહીં રહો છો.

હિન્દી અનુવાદ :- यह पल्लि-आवास निष्ठुर लोगों के लिए है और आप उनके स्वामी, आप तो अनन्य सौजन्य और दयायुक्त ! यहाँ रहते हो ।

ગાહા :-

એસો ન સમ્મ-જોગો અહિવડ-ભિચ્ચાણ મહ ઠિયં ચિત્તે ।
જં સોય - સચ્ચ - દક્ષિન્ન - વજ્જિયાણં ઇમં ઠાણં ॥૬૨॥

છાયા :-

એષો ન સમ્યગ્યોગોઽધિપતિ ભૂત્યાનાં મમ સ્થિતં ચિત્તે ।
યત્ શૌચ - સત્ય - દાક્ષિણ્ય - વર્જિતાનામિદં સ્થાનમ્ ॥૬૨॥

અર્થ :- આ સ્વામી અને સેવકનો સમ્યગ્ યોગ મારા ચિત્તમાં બેસતો નથી-આ સ્થાન તો પવિત્રતા-સત્ય-અને દાક્ષિણ્યથી રહિત લોકોનું છે.

હિન્દી અનુવાદ :- यह स्वामी और सेवक का सम्यग् योग मेरे चित्त में बैठता नहीं है। यह स्थान तो पवित्रता-सत्य और दाक्षिण्यता से रहित है।

ગાહા :-

ભિલ્લાણં નાહાવિ હુ જં ઇરિસ-ગુણ-ગણેણ સંજુતા ।
એવં મણમ્મિ ભાવડ મહંતમચ્છેરયં મજ્ઞ ॥૬૩॥

છાયા :-

ભિલ્લાનાં નાથોઽપિ ખલુ યદ્-ઇદ્દશ ગુણ-ગણેન સંયુક્તઃ ।
એવં મનસિ ભાવયતિ મહાન્તમાશ્ચર્ય મહ્યમ્ ॥૬૩॥

અર્થ :- આવા પ્રકારના ગુણગણથી યુક્ત ભિલ્લોનો સ્વામી હોય તે મારા મનને મોટું આશ્ચર્ય લાગે છે.

हिन्दी अनुवाद :- और आप ऐसे अनेक गुणगण से युक्त भिल्लों के स्वामी हो यह बात मेरे दिल में, बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करती है।

गाथा :-

असरिस-सोजन्न-जुया तुम्हे एयाए वसह पल्लीए ।
उत्तम-नरावि होउं साहह मह केण कज्जेण ? ॥६४॥

छाया :-

असदृश-सौजन्य-युक्ता त्वयि एतस्मिन् वसत पल्लयाम् ।
उत्तमनरोऽपि भूत्वा कथयत मह्यं केन कार्येण ? ॥६४॥

अर्थ :- असाधारण सौजन्यथी युक्त उत्तम मानव थईने पण तमे आ पल्लीमां केम रहं छो ? ते मने कहो ?

हिन्दी अनुवाद :- असाधारण सौजन्य से युक्त उत्तम मानव होकर भी आप इस पल्ली में क्यों वास करते हो ? वह मुझसे कहो ?

सुप्रतिष्ठ द्वारा वृत्तांत कथन

गाथा :-

तो भणइ सुपइडो किं कहिएणं इमेण धनदेव ! ।
वंचणमवमाणं चिय मइ-जुत्तो नो पगासेज्जा ॥६५॥

छाया :-

ततः भणति सुप्रतिष्ठः किं कथितेनानेन धनदेव ! ।
वञ्चनमपमानमेव मति-युक्तः न प्रकाशयेत् ॥६५॥

अर्थ :- त्पारे सुप्रतिष्ठ पल्लिपति कहे छे “हे धनदेव ! आ कहेवा वडे शुं ? बुद्धिशाली पोतानी ठगाइ तथा अपमानने जाहेर न करे - “प्रकट न करे”.

हिन्दी अनुवाद :- तब सुप्रतिष्ठ पल्लिपति ने कहा- ‘कि धनदेव ! यह कहने से क्या ? बुद्धिशाली अपनी ठगाई तथा अपमान को जाहिर नहीं करता है।

गाथा :-

तहवि हु भणामि मा होउ तुज्झ अब्बत्थणा इमा विहला ।
एगग - मणो होउं साहिज्जंतं निसामेहि ॥६६॥

छाया :-

तथापि खलु भणामि मा भवतु तुभ्यमभ्यर्थना इयं विफला ।
एकाग्र - मनः भूत्वा कथयत निःशृणु ॥६६॥

अर्थ :- तो पण कहुं छुं-जेथी तमारी प्रार्थना निष्फल न जाय, एकाग्रमनवाला थईने कहेता एवा मने सांभलो.

हिन्दी अनुवाद :- फिर भी आपकी प्रार्थना निष्फल न हो इसीलिए कहता हूँ अतः आप ध्यान से मेरी बात को सुनिये -

अंग देश वर्णन

गाहा :-

निच्चं पमुइय-नर-नारि-पुन्न-ग्रामावलीए रमणीओ ।
बहु-दिवस वन्नणिज्जो अंगा नामेण देसोऽस्थि ॥६७॥

छाया :-

नित्यं प्रमुदित-नर - नारि - पूर्ण - ग्रामावलीकया रमणीयः ।
बहु - दिवस - वर्णनीयाङ्ग नाम्ना देशोऽस्ति ॥६७॥

अर्थ :- हमेशा आनंदित नर-नारीओथी युक्त-ग्रामनी श्रेणीओ वड़े मनोहर, दिवसोना दिवसो वड़े वर्णन करी शाकाय तेवो अंग नामनो देश छे.

हिन्दी अनुवाद :- प्रतिदिन आनंदित नर-नारियों से युक्त-ग्राम की श्रेणियों से मनोहर, अंग नाम का देश है।

सिद्धार्थ नगरनी शोभा

गाहा :-

तम्मि य पुरं पुराणं पवरं सुर-नयर-सरिस-रिद्धिल्लं ।
भय-डमर-कर-विमुक्कं सिद्धत्थपुरंति विक्खायं ॥६८॥

छाया :-

तस्मिंश्च पुरं पुराणां प्रवरं सुरनगरसदृश-ऋद्धिमत ।
भय - डमर - कर - विमुक्तं सिद्धार्थपुरमिति विख्यातम् ॥६८॥

अर्थ :- अंगदेशामां अमरावती जेवुं ऋद्धिमान, दरेक नगरोंमां श्रेष्ठ-स्व-पर चक्रना भय तथा कर वेराथी रहित नगरोंमा प्रख्यात सिद्धार्थपुर नामनुं नगर छे.

हिन्दी अनुवाद :- इस अंगदेश में अमरावती जैसा ऋद्धिमान, सर्व नगरों में श्रेष्ठ, स्वःपर चक्र के भय तथा कर से रहित प्रख्यात सिद्धार्थपुर नाम का नगर है।

सुग्रीव राजा

गाहा :-

तम्मि य मयंध-रिड-करडि करड-निब्भेयणम्मि पत्तड्डो ।
कंबुन्नय-सुगगीवो सुगगीवो नाम नर-नाहो ॥६९॥

छाया :-

तस्मिंश्च मदांध - रिपु - करटी - करट - निर्भेदने प्राप्तार्थः ।
कम्बून्नत - सुग्रीवः सुग्रीव नामा नर-नाथः ॥६९॥

अर्थ :- ते सिद्धार्थपुरनगरमां मदोन्मत्त शत्रुरूप हाथीना गंडस्थलनो नाश करवामां समर्थ, शंख समान उन्नत श्रेष्ठ ग्रीवावालो 'सुग्रीव' नामनो राजा छे.

हिन्दी अनुवाद :- उस सिद्धार्थपुर नगर में मदोन्मत्त शत्रुतुल्य हाथी के गंडस्थल का नाश करने में समर्थ, शंख के समान उन्नत ग्रीवावाला "सुग्रीव" नामक राजा है।

सुग्रीव प्रियतमा राणी कमला

गाहा :-

सयलोरोह-पहाणा सुंदर-सरदिंदु-बिम्ब-सम-वयणा ।
बुद्धीए अणत्र-समा कमला नामेण से देवी ॥७०॥

छाया :-

सकलावरोध - प्रधाना सुन्दर-शरदिन्दु-बिम्ब-सम-वदना ।
बुद्धया अनन्य - समा कमला नाम्नी तस्य देवी ॥७०॥

अर्थ :- समस्त अंतःपुरमा मुख्य, सुन्दर, शरदऋतुना चन्द्रमां जेवा मुखवाली, अनुपम बुद्धिवाली, कमला नामे तैनी राणी हती.

हिन्दी अनुवाद :- समस्त अंतःपुर में मुख्य, सुन्दर, शरदऋतु के चन्द्रमा जैसी मुखवाली अनुपम बुद्धिवाली कमला नाम की उसकी रानी थी।

पुत्र सुप्रतिष्ठ जन्म एवं लालन-पालन

गाहा :-

तीए सह विसय-सोक्खं अणुहवमाणस्स तह य रज्ज-धुरं ।
पुव्व-भव-पुत्र-पायव-समप्पियं पालयंतस्स ॥७१॥
वच्चंतेसु दिणेषु तीए देवीए अह अहं पुत्तो ।
जाओ कयं च नामं विहिणा मह सुप्पइट्ठोत्ति ॥७२॥

छाया :-

तया सह विषय-सौख्यमनुभवमानस्य तथा च राज्य-धुरम् ।
पूर्व - भव - पुन्य - पादप समर्पितं पालयतः ॥७१॥
गच्छत्सु दिनेषु तस्याः देव्याः अथाहं पुत्रः ।
जातः कृतं च नाम विधिना मम सुप्रतिष्ठ इति ॥७२॥

अर्थ :- कमला राणीनी साथे विषयसुख भोगवतां तथा पूर्व भवनां पुण्यरूप वृक्षथी प्राप्त थयेल राज्यधुराने वहन करतां दिवसो पसार थये छते ते कमलादेवीने हुं पुत्र थयो, अने विधि वडे मारुं “सुप्रतिष्ठ” ए प्रमाणे नाम राख्यु. हिन्दी अनुवाद :- कमला रानी के साथ विषयसुख का सेवन करते हुए तथा पूर्व भव के पुण्यरूप वृक्ष से प्राप्त हुए राज्यधुरा का संचालन करते कितने ही दिनों बाद कमलादेवी की कुक्षी से मेरा जन्म हुआ और विधिपूर्वक मेरा “सुप्रतिष्ठ” ऐसा नामकरण किया गया।

गाहा :-

लालिज्जंतो पंचहिं धाईहिं कमेण वड्डमाणोऽहं ।
संजाओ पंच-वरिसो माउ-पिरुणं कयाणंदो ॥७३॥

छाया :-

लालयन् पञ्चभि र्धात्रिभिः क्रमेण वर्धमानोऽहम् ।
सज्जातः पञ्च - वर्षः मातृ - पित्रोः कृतानन्दः ॥७३॥

અર્થ :- પાંચ ધાવ માતા વડે લાલન પાલન કરાતો હું ક્રમથી વૃદ્ધિને પામતો માતા-પિતાને આનંદ આપતો પાંચ વરસનો થયો.

હિન્દી અનુવાદ :- પાંચ ધાય માતાઓં સે લાલિત, માતા-પિતા કો આનંદિત કરતા, ક્રમ સે બઢતા મૈં પાંચ સાલ કા હુઆ।

વર્ષા વર્ણન

ગાઠા :-

એત્યંતરમ્મિ ગિમ્હે સંતાવિય-મહિ-યલે વઙ્કકંતે ।
 નિવ્વવિય-મહી-વીઢો રસંત-સાલૂર-સંઘાઓ ॥૭૪॥
 પવહંત-બહલ-વાહિણી-ખલહલ-સંસદ્-બહિરિય-દિગંતો ।
 ગજ્જંત-ગહિર-જલહર-દંસણ-નચ્ચંત-સિહિ-નિવહો ॥૭૫॥
 પપ્પુલ્લ-ફુલ્લ-સોહિય-નીવોહ-વિરાયમાણ-વણ-નિયરો ।
 મુચ-કુંદ-કુડય-સંદિય-રય-ગમ્મિણ-વાડય-સમીરો ॥૭૬॥
 પુલિણ-પડ્ડિય-બાલય-કય-વાલુય-દેડલેહિં રમણીઓ ।
 કરિસય-જણ-પારંભિય-હલુત્તય ચચ્ચિય-બડ્ડલ્લો ॥૭૭॥
 હરિસ-વંસ-હસિર-પામર દિસિ-દિસિં ચબ્ભત્ત-ભૂરિ-કેયારો ।
 પત્તો વાસા-રત્તો કદ્દમ-દુલ્લંઘ-મગ્ગિલ્લો ॥૭૮॥

છાયા :-

અત્રાન્તરે ગ્રીષ્મે સંતાપિત-મહિતલે વ્યુત્ક્રાન્તે ।
 નિર્વાપિત-મહી-પીરુઃ રસન્-સાલૂર-સંઘાતઃ ॥૭૪॥
 પ્રવહન્-બહલ-વાહિનિ-ખલખલ-સંશબ્દ-બધિરિત-દિગંતઃ ।
 ગર્જન્-ગમ્મીર-જલધર-દર્શન-નૃત્યત્-શિખિ-નિવહઃ ॥૭૫॥
 પ્રફુલ્લ-પુષ્પ-શોભિત-નીપૌઘ-વિરાજમાન-વન-નિકરઃ ।
 મુચુકુન્દ-કુટજ-સ્પન્દિત-રજ-ગર્ભિત-વાત-સમીરઃ ॥૭૬॥
 પુલિન-પ્રતિષ્ઠિત-બાલક-કૃત-વાલુકા-દેવકુલૈઃ રમણીયઃ ।
 કર્ષક-જન-પ્રારમ્ભિત-હલયુક્તઃ ચર્ચિત-બલીવર્દાઃ ॥૭૭॥
 હર્ષ-વશ-હસનશીલ-પામર દિશિ દિશિ ચ અભ્યક્ત ભૂરિકેદારઃ ।
 પ્રાપ્તઃ વર્ષારાત્રઃ કર્દમ-દુર્લંઘ-માર્ગવાન્ ॥૭૮॥

-પંચમિઃ કુલકમ્

અર્થ :- ઇટલીવારમાં બિષ્મ શ્રુતુ પસાર થયે છતે સંતાપિત ભૂમંડલ શીતલ થયું, ચારે બાજુ દેડકાઓ અવાજ કરવા લાગ્યા, વહેતા પ્રવાહના કલકલ અવાજોથી દિશાઓ બધિર બની છે, તથા ગર્જના કરતા ગંભીર મેઘના દર્શનથી નૃત્યકરતા મોરના સમૂહવાલી, સ્ત્રીલેલા પુષ્પોથી શોભતા કદમ્બવૃક્ષનાસમૂહથી શોભતા વનસમૂહ વાલી, મોગરા-ચંપા આદિ વિવિધ પુષ્પોની સુગંધિત રજયુક્ત વહેતા વાયુવાલી, કિનારા પર રહેલા બાલકો વડે કરેલા રેતીના દેવકુલો વડે રમણીય, રમેદુતજનથી પ્રારમ્ભિત હલયુક્ત પૂજાયેલા બલીવર્દો જેમાં છે, હર્ષને વશ

हास्यशील दीन मनुष्य वड़े दशो दिशा मां सिज्जायेल घणा कादववाली अने कादवथी दुर्लघ्य मार्गवाली वर्षाऋतु आवी.

हिन्दी अनुवाद :- ग्रीष्मऋतु के बीत जाने पर संपूर्ण पृथ्वी मंडल शीतल बना और चारों ओर मण्डूक की आवाज सुनाई देने लगी, बहते हुए प्रवाह के कलकल आवाजों से दिशाएं बधिर बन गई तथा गंधीर गर्जना करते मेघ के दर्शन से मयूर समूह नृत्य करने लगा, विकसित पुष्पों से सुशोभित, कदम्बवृक्ष के समूह से मनोहर वन समूहवाली, मोगरा-चंपादि विविध पुष्पों की रजयुक्त सुगंधित वायु वहां बहने लगी, नदी के किनारे पर बालकों द्वारा बनाए हुए रेत के मंदिरों से मनोहर, कृषकजनों से पूजित बलीवर्दवाली, हास्यशील मनुष्य द्वारा दशों दिशा में सिञ्चित बहुत कीचड़वाली और कादव से दुर्लघ्य मार्गवाली वर्षाऋतु आयी।

गाथा :-

एयारिसम्मि नव-पाउसम्मि पत्तम्मि अन्न-दिवसम्मि ।
 नर-नाहो सुग्रीवो विहिणा कय-भोयणो संतो ॥७९॥
 चंदण-चच्छिय-देहो परिहिय-मिउ-सण्ह-निम्मल-दुगूलो ।
 तंबोल-वग-हत्थो समागतो देवि-भवणम्मि ॥८०॥
 राजानु देवी भवनमां गमन

छाया :-

एतादृशो नव-प्रावृषि प्राप्ते अन्य-दिवसे ।
 नरनाथः सुग्रीवो विधिना कृत-भोजनः सन् ॥७९॥
 चन्दन-चर्चित-देहः परिहित मृदु श्लक्ष्ण-निर्मल-दुकूलः ।
 ताम्बुल-वर्ग-हस्तः समागतो देवी-भवने ॥८०॥

अर्थ :- आवा प्रकार नो नूतन वरसाद प्राप्त थये छते अन्य-दिवसे विधिपूर्वक करेला भोजन वालो, चन्दन थी पूजित देहवालो, मृदु-रेशमी निर्मल दुकूलवालो, ताम्बुल वर्ग ने ग्रहण करेला हाथ वालो, राजा सुग्रीव देवी भवनमां आव्यो.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार नूतन वर्षा आने पर एक दिन विधिपूर्वक भोजन कर, चन्दन से अर्चित देहवाला, कोमल और निर्मल रेशमी दुकूलवाला, ताम्बूलादि से युक्त हाथवाला सुग्रीव राजा देवी भवन में आया।

गाथा :-

सत्त-तले पासाए आरूढो उवरिमाए भूमीए ।
 देवीए कय-विणओ महरिह-सेज्जाए आसीणो ॥८१॥

छाया :-

सप्त-तले प्रासादे आरूढो उपरितमायां भूम्याम् ।
 देव्या कृत-विनयो महर्घ्य-शय्याया-मासीनः ॥८१॥

अर्थ :- सातमालनां प्रासादमां उपरनी भूमि पर आवेलो, देवी वड़े करेला विनयवालो महारुद्धिवाली शय्यामां बैठेलो-

गाहा :-

खणमेगमच्छरुणं परिहास-कहाहिं पिय-यमाए सह ।
सिय-वसन-च्छाडयाए कोमल तूलीए पासुत्तो ॥८२॥

छाया :-

क्षणमेकमासित्वा परिहास - कथाभिः प्रियतमाया सह ।
श्वेत - वसन - छादितायां कोमल - तूलीकायां प्रसुप्तः ॥८२॥

अर्थ :- प्रियतमानी साथे परिहासनी कथावडे क्षण एक खेँचायेला चित्तवालो
श्वेतवस्त्रथी आच्छादित कोमल शय्यामां सूलो.

हिन्दी अनुवाद :- सात मंजिले भवन के छत पर देवी के अनुरोध से राजा अतिमूल्यवान् शय्या
पर बैठा और प्रियतमा की हास-परिहासयुक्त कथाओं से आनन्दित होकर श्वेत वस्त्र से आच्छादित
कोमल शय्या पर सो गया।

गाहा :-

तत्तो य सजल-जलहर-गाज्जिय-सहेण नडु-निद्धो सो ।
उड्डितुं संनिविद्धो निज्जुहग-संठिय-मसूरे ॥८३॥

छाया :-

ततश्च सजल-जलधर गर्जित-शब्देन नष्ट-निद्रः सः ।
उत्थिय संनिविष्टो निर्यूहक-संस्थित-मसूरे ॥८३॥

अर्थ :- त्याटपछी जलयुक्त मेघनी गर्जनाथी चाली गयेली निद्रावालो तै उठीने
झरूखामां रहेलो गादी-तकिया पर बैठो.

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् जलयुक्त मेघ की गर्जना से उन्निद्र राजा उठकर झरोखों में रखे हुए
अर्धासन पर बैठा।

राजा-राणीनो आलाप-संलाप

गाहा :-

अद्धासणो निविद्धा कमलदेवीवि ताहे नर-पहुणो ।
वज्जरइ तओ राया हरिस-वसुल्लसिय-रोमंचो ॥८४॥

छाया :-

अद्धासने निविष्टा कमलादेवी अपि तदा नर-प्रभवः ।
कथयति ततः राजा हर्ष-वशोल्लसित-रोमाञ्चः ॥८४॥

अर्थ :- अने त्याटे अर्द्धासन पर राजा बैठे छते कमलादेवी पण आवीने बेठी
तेथी हर्षना वशाथी उल्लसित रोमाञ्चवालो राजा कहे छे.

हिन्दी अनुवाद :- अर्धासन पर राजा के बैठने पर कमलादेवी भी आकर वहाँ बैठी तब हर्ष से
उल्लसित रोमाञ्चवाला राजा कहने लगा।

गाहा :-

मह संगम गरुय-समुल्लसंत-मणहर-पओहरा झत्ति ।
पेच्छ पिए! संजाया तुज्झ सरिच्छा कुवेर-दिसा ॥८५॥

છાયા :-

મમ-સંગમ-ગુરુક-સમુલ્લસન્-મનહર-પયોધરા ઇટિતિ ।
પશ્ય પ્રિયે ! સજ્જાતા તવ સદૃશા કુબેર-દિક્ ॥૮૫॥

અર્થ :- “હે પ્રિયે ! મારા સંગમથી મોટા ઉલ્લસિત, મનોહર પયોધરવાલી તું થઈ છે, તેમ આ મેઘ ના સંગમ થી ઉત્તર દિશા પળ પયોધર વાલી થઈ છે.”

હિન્દી અનુવાદ :- “હે પ્રિયે ! મેરે સંગમ સે અતિ ઉલ્લસિત મનોહર પયોધરવાલી તૂં હુઈ હૈ, ઉસી તરહ મેઘ કે સંગમ સે ઉત્તરદિશા બી પયોધરવાલી હુઈ હૈ.”

ગાહા :-

તરલત્તં નયણાણં કુડિલત્તં સુતણુ ! તુજ્ઞ કેસાણં ।
અણુકરદ પેચ્છ વિજ્ઞૂ ઘણ-મજ્ઞે ચિગિચિગાયન્તી ॥૮૬॥

છાયા :-

તરલત્ત્વં નયનાનાં કુટિલત્ત્વં સુતનુ ! તવ કેશાનામ્ ।
અનુકરોતિ પશ્ય વિદ્યુત્ ઘન-મધ્યે પ્રકાશયન્તી ॥૮૬॥

અર્થ :- હે સુતનુ પ્રિયે ! મેઘની મધ્યમાં પ્રકાશાતી આ વિજલી તારા નેત્રોની ચપલતાનું અને કેશકલાપોની કુટિલપણાનું અનુસરણ કરે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- હે સુતનુ પ્રિયે ! મેઘ કે મધ્ય મેં ચમકતી યહ બિજલી તેરે નેત્રોં કી ચપલતા કા ઓર કેશકલાપ કી કુટિલત્વ કા અનુસરણ કરતી હૈ.

ગાહા :-

અન્નં ચ પિય ! પેચ્છસુ પરિભ્રમંતેહિં ઇન્દ્રગોવેહિં ।
નજ્જદ પાડસ-લચ્છી પચુન્નિયા મહિ-યલે પડિયા ॥૮૭॥

છાયા :-

અન્યચ્ચ પ્રિય ! પશ્ય પરિભ્રમન્તૈઃ ઇન્દ્રગોપૈઃ ।
જ્ઞાયતે પ્રાવૃદ્-લક્ષ્મી, પ્રચૂર્ણિતા મહિ-તલે પતિતા ॥૮૭॥

અર્થ :- વલી હે પ્રિયે ! જો આ ભમતા ઇન્દ્રગોપવડે વર્ષારૂપી લક્ષ્મી ચૂર-ચૂર થઈને પૃથ્વી તલ પર પડી ગઈ છે.

હિન્દી અનુવાદ :- ઓર પ્રીં હે પ્રિયે ! દેખો, યહ ધૂમતે હુઇ ઇન્દ્રગોપ દ્વારા વર્ષારૂપી લક્ષ્મી ચૂર-ચૂર હોકર પૃથ્વીતલ પર ગિર પડી હૈ.

ગાહા :-

પાડસ-નરિદ-નવ-સંગમમ્મિ જાયમ્મિ ભૂમિ-મહિલાયે ।
હરિયંકુર-ચ્છલેણં પેચ્છસુ રોમંચઓ જાઓ ॥૮૮॥

છાયા :-

પ્રાવૃદ્-નરેન્દ્ર-નવ-સન્નમે જાતે ભૂમિ-મહિલાયામ્ ।
હરિતાઙ્કુર-ચ્છલેન પશ્યત્સુ (પશ્ય) રોમાઞ્ચક જાતઃ ॥૮૮॥

અર્થ :- વર્ષારૂપી રાજાનો નવો સજ્જમ થયે છે તે પૃથ્વીરૂપી સ્ત્રીના રોમાઞ્ચ હરિત અંકુરના બહાના વડે માર્ગ માં રૂઢા થઈ ગયા છે.

હિન્દી અનુવાદ :- વર્ષારૂપી રાજા કા નૂતન સજ્જમ આને પર પૃથ્વીરૂપી સ્ત્રી કા રોમાઞ્ચ હરિત અંકુર કે બહાને માર્ગ મેં રૂઢે હો ગયે હૈં.

ગાહા :-

નિદુર-કર-પસરેણં ઇમેણ સંતાવિઆ ઇમા પુહઈ ।
ઇય રોસેણવ રુદ્ધો ઘણેહિં સૂરસ્સ કર-પસરો ॥૮૯॥

છાયા :-

નિષ્કુર - કર - પ્રસરેણાનેન સંતાપિતા ઇષા પૃથ્વી ।
ઇતિ રોષેણૈવ રુદ્ધઃ ઘનૈઃ સૂર્યસ્ય કર-પ્રસરઃ ॥૮૯॥

અર્થ :- આ સૂર્યના નિષ્કુર-કિરણોનાં પ્રસરણવડે આ પૃથ્વી સંતાપિત થઈ છે એ પ્રમાણેના રોષ વડે જ મેઘવડે સૂર્યના કિરણોના પ્રસર ને અટકાવાયો છે.

હિન્દી અનુવાદ :- યહ પૃથ્વી સૂર્ય કે નિષ્કુર કિરણોં કે પ્રભાવ સે સંતાપિત હો ગઈ હૈં ઇસ પ્રકાર કે રોષ સે હી મેઘ દ્વારા સૂર્ય કે કિરણોં કા પ્રસાર સ્થગિત કર દિયા હૈં. (અવરુદ્ધ કિયા હૈં).

ગાહા :-

મહ આગમેવિ પિય-વિરહિયાણ મહિલાણ કિં ન ફુટ્ટાઈં ।
હિયયાઈં સામરિસં વિજ્જુજ્જોણ જોણ્ઠ ॥૯૦॥

છાયા :-

મમ આગમેઽપિ પ્રિય-વિરહિનાનાં મહિલાનાં કિં ન સ્ફુટિતાનિ ।
હૃદયાનિ સામર્ષં વિદ્યુદ્દ્યોતેન દ્યોતયતિ ॥૯૦॥

અર્થ :- મારુ આગમન થયે છે તે પળ પ્રિય થી વિરહિત સ્ત્રીઓ નાં હૃદયો કેમ તૂટતા નથી ! એમ વિચારી વર્ષાકાલ વિજલી ના પ્રકાશ ના સ્વરૂપે રોષ સહિત પ્રકાશો છે.

હિન્દી અનુવાદ :- મેરા આગમન હોને પર ભી પ્રિય સે વિરહિત સ્ત્રિયોં કા હૃદય ક્યોં તૂટતા નહીં હૈં એસા સોચકર આમર્ષયુક્ત વર્ષા બિજલી કે ઉદ્યોત સે પ્રકાશિત હોતી હૈં.

ગાહા :-

નાડં મહ આગમણં તહવિ હુ કિં ચલ્લિયા પિયા મોતું ।
ગજ્જંતો રોસેણવ પહિયાણં દલઇ હિયયાઈં ॥૯૧॥

છાયા :-

જ્ઞાત્વા મદાગમનં તથાપિ રહ્યું કિં ચલિતા પ્રિયાં મુક્ત્વા ।
ગર્જત્ રોષેણેવ પથિકાનાં દલયતિ હૃદયાનિ ॥૯૧॥

અર્થ :- મારા આગમન ને જાણીને પણ તમે તમારી પ્રિયાઓ ને છોડીને કેમ ચાલી ગયા છો ? એ પ્રમાણે રોષવડે ગર્જના કરતા મુસાફરોના હૃદય ને આંદોલિત કરે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- મેરા આગમન હોને પર ખી તુમ અપની પ્રિયાઓં કો છોડકર ક્યોં ચલે ગઈ ?
એસે રોષ સે ગર્જારવ કરતે હુઈ મેઘ મુસાફિરોં કે હૃદય કો આંદોલિત કરતે હૈં।

ગાહા :-

ધવલ-બલાયા-દાઢો વિજ્ઞુ-લયા-ચવલ-દીહ-જીહાલો ।
કસળ-સરીરો ધાવડ પહિયાણં પાડસ-પિસાઓ ॥૧૨॥

છાયા :-

ધવલ-બલાકા-દંષ્ટ્રા-વિદ્યુત-લતા-ચપલ-દીર્ઘ-જિહાવાન્ ।
કૃષ્ણ-શરીરો ધાવતિ પથિકાનાં પ્રાવૃટ્ પિશાચઃ ॥૧૨॥

અર્થ :- ધવલબલાકા જેવી, દાઢીવાલો, બિજલી ની લતા જેવો ચંચલ, લાંબી
જીભવાલો, કાળા શરીરવાલો પિશાચરૂપી મેઘ પથિકોની પાછલ દોડે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- શ્વેત બલાકા જેસી દાઢીવાલા, બિજલી કી લતા જેસા ચંચલ, લંબી જીભવાલા,
કૃષ્ણ શરીરવાલા, પિશાચ રૂપી મેઘ પથિકોં કે પીછે દોડતા હૈ।

ગાહા :-

પેછ સુર-ચાવ-નિગગય-ધારા-બાળેહિં વિરહિ-હિયયાઈ ।
વિંધંતો ડવહસડવ પંચસરં પંચ-સર-સહિયં ॥૧૩॥

છાયા :-

પશ્ય સુર-ચાપ-નિર્ગત-ધારા-બાળૈર્વિરહિ-હૃદયાનિ ।
વિંધ્યત્ ઉપહસતિ ઇવ પચ્ચશરં પંચ-સર-સહિતમ્ ॥૧૩॥

અર્થ :- પ્રિયે ! જો, ઇન્દ્ર ધનુષ્યથી નિકલેલ ધારા રૂપ બાળોથી વિયોગીઓનાં
હૃદય ને બીંધતો આ વર્ષાઋતુ પાંચ બાળ સહિત કામદેવ નો ઉપહાસ કરે છે."

હિન્દી અનુવાદ :- પ્રિયે ! દેખ, યહ ઇન્દ્ર ધનુષ સે નિકલતી ધારા રૂપી બાળોં સે વિયોગિયોં કે
હૃદય કો વ્યથિત કરતી યહ વર્ષાઋતુ પાંચ બાળોં સે યુક્ત કામદેવ કા ઉપહાસ કરતી હૈ।"

ગાહા :-

અત્યંતરમ્મિ દેવી નર-નાહં ભળડ હરિસિયા સંતી ।
સેસ ડકુણં નર-વર ! અઢ્ઢહિઓ પાડસો ઇસો ॥૧૪॥

છાયા :-

અત્રાન્તરે દેવી નર - નાથં ભળતિ હર્ષિતા સન્તી ।
શેષ - ઋતૂનાં નર - વર ! અભ્યધિકઃ પ્રાવૃટ્ ઇષઃ ॥૧૪॥

અર્થ :- ત્યાં વચ્ચે જ પ્રસન્ન થતી દેવી રાજાને કહે છે કે હે નરવર ! આ વર્ષાઋતુ
બધી ઋતુમાં શ્રેષ્ઠ છે.

હિન્દી અનુવાદ :- તબ બીચ મેં હી પ્રસન્ન હોતી હુઈ દેવી રાજા કો કહતી હૈ - "હે નરવર ! યહ
વર્ષાઋતુ સર્વ ઋતુઓં મેં શ્રેષ્ઠ ઋતુ હૈ।"

ગાહા :-

મોત્તૂળ વિરહિણી-જળં સુહઓ જં ઇસ કામુય-જળસ્સ ।
પામર-વચ્છ-તળોસહિ-પમુહાણં તહય જીવાણં ॥૧૫॥

છાયા :-

મુક્ત્વા વિરહિણિ-જનં સુખદઃ યદ્દ ઇષા કામુક-જનસ્ય ।

પામર-વત્સ-તૃણૌષધિ-પ્રમુખાનાં તથા ચ જીવાનામ્ ॥૧૫॥

અર્થ :- માત્ર વિરહિણી સ્ત્રીઓ ને છોડી ને આ ઋતુ કામુકજનને, પામર, વાછરડા તથા તૃણ ઔષધિ આદિ જીવોને સુખ આપનારી થાય છે.”

હિન્દી અનુવાદ :- યહ વર્ષાઋતુ માત્ર વિરહિણી સ્ત્રિયોં કો છોડકર કામુકજન, કૃષિજન, વત્સ, તૃણ એવં ઔષધિ આદિ જીવોં કો સુખ દેને વાલી હૈ।”

ગાહા :-

અહ ભળઇ પુહવી-નાહો ઈસિં હસેઝળ, દેવિ ! તં સચ્ચં ।

આહીળં સંજાયં જં સુમ્મઇ એથ્ લોગમ્મિ ॥૧૬॥

છાયા :-

અથ ભળતિ પૃથવી-નાથ ઈષત્ હસિત્વા, દેવિ ! તત્ સત્યં ।

કિંવદન્તી સજ્જાતં યત્ શ્રૂયતે અત્ર લોકે ॥૧૬॥

અર્થ :- હવે રાજા કંઠક હસીને કહે છે, “હે દેવિ ! સાચી બાત છે, આ લોકમાં કથા પળ સ્વી છે, સુખી લોકો જગત્ ને સુખી જ જોવે છે.”

હિન્દી અનુવાદ :- અતઃ રાજા કુછ સ્મિત હો કર કહતા હૈ કિ હે દેવિ ! સચ્ચી બાત હૈ, ઇસ લોક મેં કથા ખી એસી હી હૈ।

ગાહા :-

ધ્રાયા પુરિસા પેચ્છંતિ આયરા ઘાયયં દિસા-વલયં ।

તહ દેવિ ! તુમં સુહિયા સવ્વં સુહિયંતિ મન્નેસિ ॥૧૭॥

છાયા :-

ધ્રાતાઃ પુરુષા પશ્યન્તિ આદરાત્ ધ્રાતકં દિગ્-વલયં ।

તથા દેવિ ! ત્વં સુખિતા સર્વં સુખિં ઇતિ મન્યસે ॥૧૭॥

અર્થ :- તથા હે દેવિ ! તું સુખા છે માટે સર્વે ને સુખી માને છે। જેમ સંતુષ્ટ પુરુષો આદરથી સુકાલવાલી દિશાવલયને જોવે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- તથા હે દેવિ ! તૂ સુખી હૈ ઇસીલિએ સખી કો સુખી માનતી હો। જૈસે સંતુષ્ટ પુરુષ આદર સે સુકાલ વાલી દિશાવલય કો હી દેખતા હૈ।

ગાહા :-

સવ્વેવિ દેવિ ! ઉઝળો સઝન્ન-લોયસ્સ હોંતિ સુહ-હેઝ ।

પુન્ન-વિહૂણાળ પુળો પાઝસ-સમઓવિ દુહ-હેઝ ॥૧૮॥

છાયા :-

સર્વેઽપિ દેવિ ! તુ પુનઃ સપુણ્ય-લોકસ્ય ભવન્તિ સુખ-હેતુઃ ।

પુણ્યવિહિનાનાં પુનઃ પ્રાવૃદ્-સમયોઽપિ દુઃખહેતુઃ ॥૧૮॥

અર્થ :- વલી હે દેવિ ! પુણ્યવાન્ લોકો ને સર્વે પળ સુખ માટે થાય છે. વલી પુણ્યરહિતોને તો વર્ષાસમય પળ દુઃખનું કારણ બને છે.

हिन्दी अनुवाद :- और हे देवि ! पुण्यवान् लोगों को सभी चीज सुख के लिए होती है और निष्पुण्यवालों को तो वर्षासमय भी दुःख का कारण बनती है।

गाथा :-

ओ ! पेच्छ पेच्छ सुंदरि ! अद्ध-समारम्मि जर-कुडीरम्मि ।
 ओघसर-सय-विराडय-डिंभ-समूहे रुयंतम्मि ॥१९॥
 नियय-घरिणीए बाढं चोइज्जंतो पुणो पुणो वरओ ।
 आवरण-रहिय-देहो हम्मंतो वारि-धाराहिं ॥१००॥
 उद्धसिय-रोम-कूवो सीयल-अनिलेण संकुडय-गत्तो ।
 एसो दरिद-पुरिसो कहकहवि समारेइ कुडीरं ॥१०१॥

छाया :-

ओ पश्य ! पश्य ! सुंदरि ! अर्ध - समारचिते जरत्-कुटीरे ।
 ओघसर - शत - विराजित - डिम्भ - समूहे - रुदिते ॥१९॥
 निजक-गृहिण्या बाढं चोध्यमानः पुनः पुनः वराकः ।
 आवरण-रहित-देहो हन्यमान वारि-धाराभिः ॥१००॥
 उदघुषित-रोम-कूपः शीतलानिलेन सङ्कुचित-गात्रः ।
 एषो दरिद्र-पुरुषः कथं कथमपि समारचयति कुटीरम् ॥१०१॥

अर्थ :- वली हे सुन्दरी जो ! जो ! अर्धा ठांकेला-तूटेला झूपडाओमां वरसादनी धारा पडता गरीब बालको रडी रहया छे। पोतानी पत्नीवडे वारंवार अत्यंत प्रेरणाकरातो, आवरणरहित देहवालो, पाणीनी धारावडे कंपतादेहवालो, उंचा थयेला रुंवाटावालो, ठंडा पवनथी संकुचित गात्रवालो आ दरिद्र पुरुष केमे करीने घरकाम समारे छे।

हिन्दी अनुवाद :- और भी हे सुन्दरी ! देखो, देखो ! अर्ध टूटी झोपड़ियों में वर्षा का पानी गिरने से गरीब बालक रो रहा है। अपनी पत्नी से बार-बार प्रेरित अनावृत देहवाला, पानी की धार से कम्पित देहवाला, कम्पित रोमवाला, ठंडे पवन से संकुचित गात्रवाला यह दरिद्र पुरुष कष्ट से घर ठीक करता है।

गाथा :-

ओलंबिय - कन्न - जुयं हम्मंतं गरुय - वारि - धाराहिं ।
 ओलुग - भग - देउल - कोण - गयं रासभं-नियसु ॥१०२॥

छाया :-

उल्लंबित-कर्ण-युगं हन्यमान गुरुक-वारि-धाराभिः ।
 (छायारहितं) निस्तेज-भग्न-देवकुल-कोणगतं रासभम् पश्य ॥१०२॥

अर्थ :- धोधमार वारिधारावडे हणातो, नमीगयेला कर्णयुगलवालो निस्तेज भांगेला देवकुलना खूणामां रहेला रासभ ने तु जो।

हिन्दी अनुवाद :- अनवरत वर्षा से परेशान, झुके हुए कर्णयुगलवाला, निस्तेज भग्न देवकुल के कोने में रहे हुए रासभ को तो देख।

गाहा :-

तह पेच्छ इमं सुंदरि ! सुणहं चुल्लीए सुन्न-गेहम्मि ।
सीएण कुणुकुणंतं खर-खर-खड्डं खणेमाणं ॥१०३॥

छाया :-

तथा पश्य इमं सुन्दरि ! श्वानं चुल्लयां शून्य-गृहे ।
शीतेन कुणकुणायमानं खर - खर गर्त-खनतां ॥१०३॥

अर्थ :- तथा हे सुन्दरि ! जो, शून्य-गृहमां चुल्लामां ठंडी थी कणशता खर-
खर खाड़ी खोदता कूतरा ने जो.

हिन्दी अनुवाद :- तथा हे सुन्दरी शून्यगृह में चूल्हे में ठंडी से कांपते खट-खट गड्ढा खोदते हुए
इस कुत्ते को देख।

गाहा :-

तह पेच्छ जर-बइल्ला जलहर-धारावलीहि हम्मंता ।
ईरिया-समिउव्व मुणी वच्चंति महिं पलोएता ॥१०४॥

छाया :-

तथा पश्य जरत्बलीवर्दान् जलधर-धारावलीभिः हन्यमानान् ।
ईर्यासमितेव मुनयः व्रजन्ति महिं प्रलोकयन्तः ॥१०४॥

अर्थ :- तथा पत्नी मेघनी धारावड़े ढणाता घरडा बलदोने जो, इर्यासमिति ने
साचवता मुनिनी जेम पृथ्वीने जोता जइ रह्या छे.

हिन्दी अनुवाद :- तथा मेघ की धारा से कम्पित वृद्ध बैलों को देख, इर्यासमिति का पालन करते
मुनि की तरह पृथ्वी को देख रहे हैं।

गाहा :-

सेवालय-भूमि-तले फिल्लुसमाणा य थाम-थामम्मि ।
हत्थ-गय-लट्ठि-खंडा भिक्खं परियडइ जर-रोरो ॥१०५॥

छाया :-

शैवलित - भूमितले पतन्तः च स्थाने-स्थाने ।
हस्त-गत - यष्टि - खन्डोः भिक्षार्थं पर्यटति जरत्खड्कः ॥१०५॥

अर्थ :- सेवाल जेवी लीली धरती पर स्थाने स्थाने पडता, हाथमां रहेली लाकडीना
टेकावालो घरडो भिखारी भिखमाटे फरे छे."

हिन्दी अनुवाद :- सैवाल जैसी हरित धरती के स्थान-स्थान पर गिरते, हाथ में रही हुई लकड़ी
के आलंबनवाले वृद्धभिक्षुक भिक्षा के लिए घूमते हैं।"

गाहा :-

एवं च जाव साहइ देवीए ताव कुंचई झत्ति ।
पाय-वडणुदठिओ अह वसुदत्तो भणिउमाढत्तो ॥१०६॥

छाया :-

एवं च यावत् कथयति देव्याः तावत् कञ्चुकी झटिति ।
पाद-पतनुत्थित अथ वसुदत्तः भणितुमारब्धः ॥१०६॥

અર્થ :- આ પ્રમાણે જ્યાં સુધી રાજા રાણીની સાથે વાત કરે છે. ત્યાંસુધી માં જલ્દી થી ચરણકમલમાં પડીને અમા થયેલા વસુદત્તે હવે કહેવામાટે આરંભ કર્યો.
હિન્દી અનુવાદ :- इस तरह राजा रानी के साथ बात करता है तभी वहाँ शीघ्रता से आये वसुदत्त ने कहना प्रारम्भ किया।

દામોદર દૂતનું આગમન

ગાહા :-

देवेण जो उ पुखिं पडुविओ आसि चंप-नयरीए ।
 सिरि-कित्तिवम्म-रन्नो दूओ दामोदरो नाम ॥१०७॥

છાયા :-

देवेन यस्तु पूर्वस्मिन् प्रस्थापित आसीत् चम्पानगर्याम् ।
 श्री कीर्तिवर्म-राज्ञो दूतो दामोदरो नामा ॥१०७॥

અર્થ :- “જે પહેલા દેવવડે ચમ્પાનગરીમાં પ્રયાણ કરાવ્યો હતો તે શ્રીકીર્તિ-વર્મરાજાનો દૂત દામોદર નામનો આવ્યો છે.”

હિન્દી અનુવાદ :- प्रथम आप पूज्य द्वारा चंपापुरी में प्रयाण कराया था वह श्रीकीर्तिवर्मराजा का दूत दामोदर यहाँ पर आया है।

સભા મંડપમાં રાજાનુ આગમન એવં દેવી ભવનમાં વિદ્યુત્પાત

ગાહા :-

सो देव-पाय-दंसण-सुह-कंखी आगओ दुवारम्मि ।
 चिट्ठइ, एवं च ठिए देवो पमाणंति तं सोच्चा ॥१०८॥
 दिट्ठीए आपुच्छिय देविं सहसत्ति उट्ठिओ राया ।
 अत्थाण-मंडवस्स उ आसन्नो जाव संपत्तो ॥१०९॥
 ताव य विज्जु-चमुक्कारणंतरं चंड-चडड-संसहो ।
 आसन्नो संजाओ भेसिय-नर-नारि-संघाओ ॥११०॥

છાયા :-

स देव - पाद - दर्शन - सुख - कांक्षी आगतो द्वारे ।
 तिष्ठति, एवं च स्थिते देवः प्रमाणमिति तं श्रुत्वा ॥१०८॥
 दृष्ट्या आपृच्छय देविं सहसा इत्युत्थितो राजा ।
 आस्थान - मण्डपस्य त्वासन्नो यावत् सम्प्राप्तः ॥१०९॥
 तावच्च विद्युच्चमत्कारानन्तरं चण्ड चटट संशब्दः ।
 आसन्नः सज्जातो भेषितो नर - नारि सङ्घातः ॥११०॥

અર્થ :- દેવના ચરણકમલ ના દર્શન થી સુખાભિલાષી દ્વારપર આવેલો ઉભો છે. આ પ્રમાણે રહે છતે ‘દેવ પ્રમાણ છે’, ઇ પ્રમાણે તેના વચન સાંભળીને સહસા દૃષ્ટિવડે રાણીને પૂછીને ઉભો મયેલો રાજા જેટલીવારમાં સમામંડપમા આવ્યો તેટલીવારમાં ઇકાઠક ઘિજલીનો ચમકાર તથા પ્રચંડ ગડગડ શબ્દ થયો. બાદલોની આવી ગર્જનાથી નર-નારીનો સમૂહ ડરેલો થયો.

હિન્દી અનુવાદ :- और देव के चरणकमल के दर्शन का सुखाभिलाषी द्वार पर खड़ा है, इस

प्रकार उनके वचन सुनकर सहसा दृष्टि द्वारा राणी को पूछकर खड़ा हुआ राजा जितनी देर में सभामण्डप में आया, उतनी देर में अचानक बिजली का प्रचण्ड गड़गड़ शब्द होने लगा। बादलों की ऐसी गर्जना से नर-नारी का समूह डरने लगा।

गाथा :-

तयणंतरं च महा-हा-रव-संमीसं समुद्रियं सहं ।
देवी-गिहम्मि सोडं सहसा वलिओ मही-नाहो ॥१११॥

छाया :-

तदनन्तरं च महत् - हा - रव - संमीश्रं समुत्थितं शब्दम् ।
देवी-गृहे श्रुत्वा सहसा वलितो महि-नाथः ॥१११॥

अर्थ :- तयारपछी हा-हा-रव ना मोटा शब्दने सांभलीने राजा सहसा ऊठयो
अने देवी-भवननां पाछो फर्यो।

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् हा-हा-रव के बड़े शब्द को सुनकर राजा सहसा उठा और देवी-भवन में पुनः गया।

विद्युत द्वारा राणीने दाह

गाथा :-

वज्जरइ देवी-धावी रुयमाणी घग्घरेण सहेण ।
नर-वर ! मुट्ठा मुट्ठा देवी विज्जूए दद्धत्ति ॥११२॥

छाया :-

कथयति देवि - धात्री रुदन्ती घर्घरेण शब्देन ।
नर - वर ! मुष्टा मुष्टा देवी विद्युता दग्धा इति ॥११२॥

अर्थ :- गद्गद्गद् आवाजवड़े रड़ती देवीनी दासी कहे छे. हे नरवर ! अनर्थ थई गयो, अनर्थ थई गयो. विजली पलवाथी देवी सलगी गया छे.

हिन्दी अनुवाद :- गद्गदित आवाज से रोती हुई देवी की दासी कहती है, हे नरवर ! अनर्थ हो गया। अनर्थ हो गया। बिजली गिरने से देवी जल गयी है।

राजानो शोक-विलाप

गाथा :-

ददूण भूमि-पडियं देवी-देहं जिएण परिचत्तं ।
हा ! हा ! हत्ति भणंतो राया मुच्छा-वसं पत्तो ॥११३॥

छाया :-

दृष्ट्वा भूमि - पतितं देवि - देहं जीवेन परित्यक्तम् ।
हा ! हा ! हा ! इति भणन् राजा मूर्च्छा-वसं प्राप्तः ॥११३॥

अर्थ :- प्राणथी रहित भूमि पर पड़ेला देवीना देहने जोईने हा ! हा ! हा ! ए प्रमाणे बोलतो राजा मूर्च्छित थयो.

हिन्दी अनुवाद :- भूमि पर गिरे हुये निश्चेष्टित देवी के देह को देखकर हा ! हा ! हा ! इस प्रकार बोलता हुआ राजा मूर्च्छित हो गया।

गाहा :-

ददृक्षुण भूमि-पडियं नर-नाहं मुच्छियं विगय-चेदुं ।
भूरि-तरो संजातो परियण-अक्कंद-सद्दोवि ॥११४॥

छाया :-

दृष्ट्वा भूमि - पतितं नर - नाथं मूर्च्छितं विगत - चेष्टम् ।
भूरितरः सञ्जातः परिजनाक्रन्द शब्दोऽपि ॥११४॥

अर्थ :- भूमिपट पडेला चेष्टावगटना मूर्च्छित राजाने जोईने परिजनो नो आक्रन्दन शब्द पण अत्यंत वधी गयो.

हिन्दी अनुवाद :- भूमि पर निश्चेष्टित, मूर्च्छित राजा को देखकर परिजनों के आक्रन्दन शब्द भी अत्यंत बढ़ गये।

गाहा :-

पास-ट्टिय पुरिसेहिं सीयल-पवणाइयम्मिं विहियम्मि ।
रायावि विगय-मुच्छो विलविउमेवं समाढत्तो ॥११५॥

छाया :-

पार्श्व - स्थित - पुरुषैः शीतलपवनादिके विहिते ।
राजाऽपि विगत - मूर्च्छः विलपितुमेवं समारब्धः ॥११५॥

अर्थ :- पासे रहेला पुरुषोवडे शीतलपवनादिक विंझाये छते गयेली मूर्च्छावाळो राजा आ प्रमाणे विलाप करवा लाग्यो.

हिन्दी अनुवाद :- पार्श्व पुरुषों द्वारा शीतलपवनादिक द्वारा मन्द मन्द वायु आने पर निर्गतमूर्च्छावाला राजा इस प्रकार विलाप करने लगा।

गाहा :-

हा ! वल्लहि ! हा सामिणि ! हा जीविय-दायगे ! विसालच्छि !
हा मह हियय-निवासिणि ! हा ! कथं गया ममं मोत्तुं ? ॥११६॥

छाया :-

हा ! वल्लभे ! हा ! स्वामिनि ! हा जीवित-दायके ! विशालाक्षि !
हा ! मम हृदय-निवासिनि ! हा ! कुत्र गता माम् मुक्त्वा ? ॥११६॥

अर्थ :- हा ! वल्लभे ! हा ! स्वामिनि ! हा जीवितने आपनारी ! हे विशालाक्षि !
हा ! मारा हृदयमां रहेनारी अरे ! मने छोडीने तुं कथां गई ?

हिन्दी अनुवाद :- हा ! वल्लभे ! हे स्वामिनि ! हा ! जीविताधार ! हा ! विशालाक्षि ! हे !
हृदयेश्वरी ! अरे तू मुझे छोड़ कर कहाँ गई ?

गाहा :-

हा गोर-देहि ! हा पिहु-पओहरे ! हा सुकोमल-सरीरे !
हा कह निग्घण-विहिणा तुह उवरिं पडिया विज्जू ? ॥११७॥

छाया :-

हा ! गौर देहि ! हा ! पृथु-पयोधरे ! हा सुकोमल शरीरे !
हा कथं निघृण-विधिना तवोपरि पतिता विद्युत् ? ॥११७॥

अर्थ :- हा ! गौरवणी ! हा ! विस्तृत पयोधरवाली, हे ! सुकोमल शरीरवाली, अरे निर्दयी एवी विधातावडे तारा उपर विजली केम पडायी ?

हिन्दी अनुवाद :- हे ! गौरवणी ! हा ! विस्तृत पयोधरवाली ! हे सुकोमलाङ्गी ! अरे ! निर्दयी विधाता द्वारा तेरे ऊपर बिजलीपात क्यों किया गया ?

गाथा :-

घनसार-घुसिण-चच्छण-उचिय-सरीरम्मि कह णु हय-विहिणा ।

विज्जू-निवाओ विहिओ मज्झ अउन्नेहिं पावेण ? ॥११८॥

छाया :-

घनसार-घुसृण-चन्दनोदित-शरीरे कथं नु हत-विधिना ।

विद्युन्निपातो विहितो ममापुन्यै र्पपेन ? ॥११८॥

अर्थ :- कपूर, केसर, चन्दनने उचित तारा शरीर पर विजलीनो पात केम करायो? हणायेल भाग्यवाला, निष्पुण्य एवा मारा पापवडे विजलीनो पात करायो छे.

हिन्दी अनुवाद :- कपूर, केसर और चन्दन से लेपित तेरे देह पर निर्भाग्य, निष्पुण्य ऐसे मेरे पाप द्वारा ही बिजली का पात किया गया है !

गाथा :-

हा देवि ! तुज्ज विरहे नर-नारी-संकुलं इमं नयरं ।

उव्वसिय-नयर-सरिसं अडवि-समाणं च पडिहाइ ॥११९॥

छाया :-

हा देवि ! तव विरहे नर - नारी सङ्कुलं इदं नगरम् ।

उद्वसित - नगर - सदृश - मटवि - समानं च प्रतिभाति ॥११९॥

अर्थ :- तेम ज हे देवि ! तारा विरहमां नर-नारी आकीर्ण एवु पण आ नगर उज्जड नगर समान अथवा जंगल जेवु लागे छे.

हिन्दी अनुवाद :- उसी तरह हे देवि ! तेरे विरह में नर-नारी से व्याप्त यह नगर उजड़े हुए नगर-तुल्य अथवा जंगल जैसा लगता है।

गाथा :-

किल देवि ! तं भणंती तुह विरहे अच्छिउं न सक्केमि ।

तं कह अहं अहन्नो तुमए सहसा परिच्यत्तो ? ॥१२०॥

छाया :-

किल देवि ! त्वं भणन्ती तव विरहे आसितुं न शक्नोमि ।

तत्कथ-महं अधन्यस्त्वया सहसा परित्यक्तः ॥१२०॥

अर्थ :- हे देवी ! “हूँ तमारा विरहमां जीववा माटे समर्थ नथी ए प्रमाणे बोलती”, तो पछी अधन्य एवा मने एकदम ज तारावडे केम छोडायो ?

हिन्दी अनुवाद :- हे देवी ! ‘मैं तुम्हारे विरह में जीने में समर्थ नहीं हूँ’ इस प्रकार तू बोलती थी, तो फिर मुझे सहसा तूने क्यों छोड़ दिया।

गाहा :-

हा ! किं न किंपि जंपसि किंवा तं सुयणु ! मज्झ रुद्धा सि ।
किं व मए अवरद्धं सुंदरि ! तं मज्झ साहेसु ? ॥१२१॥

छाया :-

हा ! किं न किमपि जल्पसि किंवा त्वं सुतनु ! मत्तो रुष्टाऽसि ।
किं वा मया अपराद्धं सुंदरि ! त्वं मह्यम् कथय ॥१२१॥

अर्थ :- अरे हे देवी ! तું केम कांडपण बोलती नथी ! अथवा तो हे सुतनु ! शुं माराथी तું रिसाई गई छे ? अथवा हे सुन्दरि ! मारा वडे कोई तारो अपराध करायो छे ? तूं मने कहे.

हिन्दी अनुवाद :- अरे ! हे देवी ! तू क्यों कुछ भी बोलती नहीं हो ! अथवा हे सुतनु ! क्या तू मेरे से नाराज हो गई हो ? अथवा तो हे सुन्दरि ! मेरे से क्या कुछ तेरा अपराध हो गया है ? तू मुझसे कह ?

गाहा :-

तं चिय मह वल्लहिया नेहो मह नत्थि अन्न-इत्थीसु ।
तुज्झ कए परिचत्तो सयलो ओरोह-नारि-जणो ॥१२२॥

छाया :-

त्वमेव मम वल्लभा स्नेहो मम नास्ति अन्य-स्त्रीषु ।
तव कृते परित्यक्त सकलावरोध-नारि-जनाः ॥१२२॥

अर्थ :- तूं ज मारी प्राणप्रिया छे, मारो स्नेह तारा सिवाय अन्य-स्त्रीओने विषे नथी, तारा माटे संपूर्ण अन्तःपुरनी नारी जनो मारावडे त्यजाई छे.

हिन्दी अनुवाद :- तू ही मेरी प्राणप्रिया हो ! मेरा स्नेह तुझे छोड़ अन्य स्त्रियों पर नहीं है। तेरे लिए मैंने संपूर्ण अन्तःपुर की स्त्रियों को भी छोड़ दिया है।

गाहा :-

तहवि तुमं किं सुंदरि ! निव्वर-रत्तस्स देसि नालावं ? ।
ता पसिय पसिय सामिणि ! उद्धिय मह देसु पडिवयणं ॥१२३॥

छाया :-

तथापि त्वं किं सुन्दरि ! निर्भर-रक्तस्य ददासि नाऽऽलापं ? ।
तस्मात् प्रसीद प्रसीद स्वामिनि ! उत्थिय मह्यं देहि प्रतिवचनम् ॥१२३॥

अर्थ :- तो पण हे सुन्दरि ! मारा विषे अत्यंत रक्त एवी पण तूं शा माटे बोलती नथी. तो हवे हे स्वामिनी कृपा कर ! कृपा कर ! ऊट्टीने मने प्रतिवचन आप."

हिन्दी अनुवाद :- तो फिर हे सुन्दरी ! मेरे पर अति रागवाली तू क्यों बोलती नहीं है, अतः हे स्वामिनी ! कृपा कर ! कृपा कर ! उठकर मुझे प्रत्युत्तर दे।"

पुत्र सहित विलाप

गाहा :-

इमाइ जाव विलवइ विविहं राया सकलुण-सहेण ।
ताव अहं संपत्तो रोवंतो तत्थ धणदेव ! ॥१२४॥

छाया :-

एवमादि यावत् विलपति विविधं राजा सकरुण-शब्देन ।

तावदहं सम्प्राप्तो रुदन् तत्र धनदेवः ॥१२४॥

अर्थ :- आ प्रमाणे करुणशब्दवड़े राजा विलाप करता हता लेटलीवाटमां रडतो एवो हुं हे धनदेव ! त्यां पढोंच्यो.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार करुणशब्द से विलाप करते थे उसी समय रोता हुआ मैं, हे ! धनदेव ! वहाँ गया ।

गाहा :-

उच्छ्रंगे विणिवेशिय ममं तओ गाढ-कलुण-सद्देण ।

तं चेव पलवमाणो सुदीहरं ख्वइ बालोव्व ॥१२५॥

छाया :-

उत्सङ्गे विनिवेश्य माम् ततो गाढ-करुण-शब्देन ।

स एव प्रलपमानः सुदीर्घं रोदिति बालेव व ॥१२५॥

अर्थ :- मने खोलांमां (गोद) बेसाडीने त्यारपछी अत्यंत करुण-शब्दवड़े ते ज प्रलापोने करतो बालकनी जेम लांबाकाल सुधी रडच्यो.

हिन्दी अनुवाद :- मुझे गोद में बैठाकर अत्यंत करुण-शब्दों द्वारा उसी प्रलापों को बोलता, बालक की तरह लंबे काल तक रोया ।

मंत्री सलाह

गाहा :-

एत्थंतरम्मि मंती सुमई-नामो भणइ नर-नाहं ।

देव ! अलं रुन्नेणं मय-किच्चं कुणह देवीए ॥१२६॥

छाया :-

अत्रान्तरे मन्त्री सुमति - नाम भणति नर-नाथम् ।

देव ! अलं रुदितेन मृत - कृत्यं कुरुथ देव्याः ॥१२६॥

अर्थ :- ए अटसामां सुमति नामनो मन्त्री राजाने आ प्रमाणे कहे छे, “हे देव ! रुदन वड़े सत्युं हवे आ देवीनुं मृत कृत्य करो !”

हिन्दी अनुवाद :- उसी समय सुमति मन्त्री राजा को इस प्रकार कहता है। “हे देव ! रुदन से क्या ? अब इस देवी का मृत कार्य कीजिए।”

गाहा :-

भणइ तओ नर-नाहो चंदण-दारुणि वाहिं निणेह ।

देवीए जेण समयं अहंपि अग्गीए विस्सामि ॥१२७॥

छाया :-

भणति ततो नर - नाथः चन्दन - दारु - बहिः नाययत ।

देव्या येन समकं अहमप्यग्नौ विशामि ॥१२७॥

અર્થ :- ત્યારપછી રાજા કહે છે, “ચન્દનના લાકડા ધના-બધા (બમણા) મંગાવો. જેથી દેવીની સાથે હું પણ અગ્નિ પ્રવેશ કરીશ.”

હિન્દી અનુવાદ :- ફિર રાજા કહતા હૈ - “ચન્દન કી બહુત સી લકડિયાँ લાઓ। જિસસે દેવી કે સાથ મૈં બી અગ્નિ મૈં પ્રવેશ કરૂંગા।”

ગાહા :-

તો મળઇ સુમદ્-મંતી કાયર-જળ ચેટ્ટિણ કિં ઇમિણા ।
મરણઽઙ્ગવસાણં અવલંબસુ ધીર ! ધીરત્તં ॥૧૨૮॥

છાયા :-

તતો મળતિ સુમતી-મન્ત્રી કાતર-જન ચેષ્ટિતેન કિં અનેન ।
મરણઽઙ્ગવસાયેન અવલમ્બસ્વ ધીર ! ધીરત્ત્વં ॥૧૨૮॥

અર્થ :- ત્યારે મન્ત્રી કહે છે. કાયરજનને યોગ્ય મરણના અધ્યવસાયરૂપ આ ચેષ્ટાવડે સર્થ ! અને હવે ધીર ! ધીરપણાનું આલંબન ધારણ કરો.

હિન્દી અનુવાદ :- તબ મન્ત્રી કહતા હૈ કાયરોં કે સમાન મૃત્યુ કે અધ્યવસાય રૂપ ઇસ ચેષ્ટા સે ક્યા ? ઓર આપ ધીરત્વ કો ધારણ કરો।

ગાહા :-

મરણેન તુઙ્ગ નર-વર ! દેસો સવ્વોવિ હોઈ જં ગમ્મો ।
પડિવક્ષ નર-વરાણં બાલો તહ સુપઈટ્ઠોત્તિ ॥૧૨૯॥

છાયા :-

મરણેન તવ નર-વર ! દેશો સર્વોઽપિ ભવતિ યત્ ગમ્યઃ ।
પ્રતિપક્ષ - નરવરાણાં બાલસ્તથા સુપ્રતિષ્ઠ ઇતિ ॥૧૨૯॥

અર્થ :- વલી હે નરવર ! આપના મરણથી સર્વે શત્રુ રાજાઓ આપણાં દેશ પર આક્રમણ કરશે. વલી આ સુપ્રતિષ્ઠ બાલ છે, તે વિચારવા યોગ્ય છે.

હિન્દી અનુવાદ :- પુનઃ હે નરવર ! આપકી મૃત્યુ સે સમી શત્રુ રાજા અપને દેશ પર આક્રમણ (યુદ્ધ) કરેંગે ઓર યહ સુપ્રતિષ્ઠ કુમાર અમી બાલક હૈ। વહ શોચનીય હૈ।

ગાહા :-

દેવાળ બંમણાળ ય લિંગીણં તહ પાગય-જણસ્સ ।
ધમ્મ કિરિયાઓ સવ્વા વહંતિ દેવે ધરંતમ્મિ ॥૧૩૦॥

છાયા :-

દેવાનાં બ્રાહ્મણાનાં ચ લિઙ્ગીનાં તથા પ્રાકૃત-જનસ્ય ।
ધર્મ-ક્રિયાઃ સર્વાન્ ! (સર્વે) વહન્તિ દેવે ધરન્તે ॥૧૩૦॥

અર્થ :- હે દેવ ! આપ હોતે છો દેવોની, બ્રાહ્મણોની, લિઙ્ગીઓની તથા પ્રાકૃત જનની સર્વ ધર્મ ક્રિયા સર્વે વહન કરે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- પુનઃ હે દેવ ! આપ રહને પર દેવોં કી, બ્રાહ્મણોં કી, લિઙ્ગીઓં કી તથા પ્રાકૃત-જનોં કી સર્વ-ધર્મ-ક્રિયા સબ વહન કરતે હૈં।

गाहा :-

महिला-मेतस्स कए न हु जुत्तं तुम्ह उत्तम-नराण ।
असमञ्जसमाचरितं विन्नाय-जग-स्सभावणं ॥१३१॥

छाया :-

महिला-मात्रस्य कृते न खलु युक्तं युस्माकं उत्तम-नराणाम् ।
असमञ्जसमाचरितं विज्ञात-जगत्-स्वभावम् ॥१३१॥

अर्थ :- जाण्या छे जगत् ना स्वभावने एवा तमारा जेवा उत्तम पुरुषोने स्त्रीमात्र माटे असमञ्जस आचरवानुं योग्य नथी.

हिन्दी अनुवाद :- जगत् के स्वभाव को जानने वाले आप जैसे उत्तम पुरुषों को स्त्री मात्र के लिए ऐसा असमञ्जस आचरण ठीक नहीं है।

गाहा :- अविद्य ।

निरुक्कम - कायस्सवि उसभ-जिणिंदस्स आइ-देवस्स ।
मरणं जायं जइया का गणणा अन्न-मणुएसु ? ॥१३२॥

छाया :- अपि च ।

निरूपक्रम - कायस्यापि ऋषभ-जिनेन्द्रस्यादि-देवस्य ।
मरणं जातं यदि वा का गणना अन्य मनुजेषु ? ॥१३२॥

अर्थ :- निरूपम कान्तिवाला ऋषभ जिनेन्द्र आदिदेवानुं पण मृत्यु थयु छे. तो पछी अन्य सामान्य जननी तो कई गणना.

हिन्दी अनुवाद :- निरूपम कान्तिवाले ऋषभ जिनेन्द्र आदिदेव की भी मृत्यु हुई है, तो फिर अन्य सामान्यजनों की क्या गिनती ?

गाहा :-

निज्जिय-पडिवक्खस्सवि छ-क्खंड-महीसरस्स भरहस्स ।
जइया जायं मरणं का गणणा अन्न-मणुएसु ? ॥१३३॥

छाया :-

निर्जित - प्रतिपक्षस्यापि षट्-खण्ड-महेश्वरस्य भरतस्य ।
यदि वा जातं मरणं का गणना अन्य-मनुजेषु ? ॥१३३॥

अर्थ :- जित्या छे शत्रुना पण छए खण्ड एवा महेश्वर भरतनु पण मरण थयु तो पछी अन्य जनने विषे कई गणना ?

हिन्दी अनुवाद :- शत्रु के सभी (छह) खण्डों को जीतनेवाले महेश्वर भरत की भी मृत्यु हुई है तो फिर अन्य जनों की क्या बात ?

गाहा :-

गरुड-परक्कम-निज्जिय-रिउ-बल-पाइक्क-चक्क-कय-रक्खा ।
सोडीरा नर-वइणो सोमजसा-SSइच्चजस-पमुहा ॥१३४॥
जइ ताव ते य निहया पाव-कयंतेण निग्घण-मणेण ।
अनिवारिय-पसरेण का गणणा अन्न-लोयम्मि ? ॥१३५॥

છાયા :-

ગુરુ-પરાક્રમ-નિર્જિત-રિપુ-બલ-પદાતિ-ચક્ર-કૃતરક્ષા ।

શૌણ્ડીરા નર-પતયઃ સોમયશા-SSદિત્યયશ-પ્રમુખાઃ ॥૧૩૪॥

યદિ તાવત્તે ચ નિહતા પાપ-કૃતાન્તેન નિઘૃણ-મનસા ।

અનિવારિત-પ્રસરેણ કા ગણના અન્ય-લોકે ? ॥૧૩૫॥

અર્થ :- મોટા પરાક્રમ થી જીત્યા છે શત્રુના સૈન્ય-પાયદલ ચક્રાદિને તથા પાયદલાદિ થી પોતાની રક્ષા કરતા શૂરવીર રાજાઓ સોમયશા-આદિત્યયશ વગેરે પ્રમુખ રાજાઓ પણ કઠોર મનવાલા પાપી કૃતાન્ત વડે હળાયા છે. તો પછી સામાન્ય જનની તો ગણના જ શું કરવાની ?

હિન્દી અનુવાદ :- બड़े पराक्रम से शत्रु सैन्य को जीतनेवाले और शत्रु की सेना एवं चक्रादिक को जीतने वाले तथा उसकी सेना से अपनी रक्षा करनेवाले शूरवीर सोमयश-आदित्ययश आदि प्रधान राजा भी कठोर मनवाले पापी कृतान्त द्वारा हत किए गए हैं, तो फिर सामान्य जन की क्या तुलना ?

ગાહા :-

જેસિંપિ ય તિત્તીસં આડયમુદહીણ પવર-દેવાણં ।

તેસિંપિ હોઈ ચવણં કા ગણના અન્ન-સત્તેસુ ? ॥૧૩૬॥

છાયા :-

યેષામપિ ચ ત્રયસ્ત્રિંશત્ આયુષ્યમુદધીનાં પ્રવર-દેવાનામ્ ।

તેષામપિ ભવતિ ચ્યવનં, કા ગણના અન્ય-સત્ત્વેષુ ? ॥૧૩૬॥

અર્થ :- જે શ્રેષ્ઠ દેવોનું તેત્રીસ સાગરોપમનું આયુષ્ય હોય છે તેઓનું પણ ચ્યવન થાય છે. તો પછી અન્ય-પ્રાણીઓને વિષે શું ગણના ?

હિન્દી અનુવાદ :- जिनका आयुष्य तैतीस सागरोपम का है वैसे उत्तमोत्तम देवों का भी च्यवन हुआ है तो फिर अन्य प्राणियों की क्या गिनती ?

ગાહા :-

મવણવહ્-વાણમંતર-જોહસિયાણં વિમાણ-વાસીણં ।

જહ નામ હોઈ ચવણં કા ગણના મણુય-લોયમ્મિ ? ॥૧૩૭॥

છાયા :-

ભવનપતિ-વાણવ્યન્તર-જ્યોતિષ્કાનાં વિમાન-વાસિનામ્ ।

યદિ નામ ભવતિ ચ્યવનં કા ગણના મનુજ લોકે ? ॥૧૩૭॥

અર્થ :- ભવનપતિ, વાણમંતર, જ્યોતિષ અને વૈમાનિક દેવોનું પણ જો ચ્યવન થાય છે. તો મનુષ્યલોક વિષે તો શું ગણના ?

હિન્દી અનુવાદ :- भवनपति, वाणमंतर, ज्योतिष और वैमानिक देवों का भी च्यवन हुआ है, तो मनुष्यलोक की क्या गिनती ?

ગાહા :-

સો કોચિ નત્થિ જીવો તિ-લોય-મજ્ઞમ્મિ જો વસં ન ગઓ ।

મચ્ચુસ્સ પાવ-મહ્ણો મોત્તું સિદ્ધે સુહ-સમિદ્ધે ॥૧૩૮॥

છાયા :-

સઃ કોઽપિ નાસ્તિ જીવઃ ત્રિ-લોકમધ્યે યઃ વશં ન ગતઃ ।

મૃત્યોઃ પાપ-મતેઃ મુક્ત્વા સિદ્ધાન્ સુખ-સમૃદ્ધાન્ ॥૧૩૮॥

અર્થ :- ત્રણે લોકની મધ્યમા ઇવો કોઈ જીવ નથી કે જે પાપમતિવાળા મૃત્યુને વશ ન થયો હોય. સુખ-સમૃદ્ધિવાળા સિદ્ધભગવંતોને છોડીને.

હિન્દી અનુવાદ :- સુખ સમૃદ્ધિવાળે સિદ્ધભગવંતોં કો છોડકર તીનોં લોક કે મધ્ય મેં એસા કોઈ જીવ નહીં હૈ કિ જો પાપમતિવાળે મૃત્યુ કે વશ ન હુઆ હો।

ગાહા :-

ઇય કાલ-કવલિયં પેચ્છરૂણ સયલંપિ તિ-હુઅણં દેવ ! ।

જાયમ્મિ દેવિ-મરણે કિં સોગં કુણહ વિહલં તુ ? ॥૧૩૯॥

છાયા :-

ઇતિ કાલ - કવલિતં દૃષ્ટ્વા સકલમપિ ત્રિભુવનં દેવ ! ।

જાતે દેવિ - મરણે કિં શોકં કુરુથ વિફલં તુ ? ॥૧૪૦॥

અર્થ :- હે દેવ ! આ પ્રમાણે કાલવડે કવલિત કરાવેલ સકલ ત્રિભુવનને જોઈને દેવીનું મરણ થયે છે તે ફોગટ શોક કેમ કરો છો ?

હિન્દી અનુવાદ :- હે દેવ ! ઇસ પ્રકાર કાલ સે કવલિત સમ્પૂર્ણ ત્રિભુવન કો દેખકર દેવી કે મરણ મેં આપકો ઇતના શોક ક્યોં હૈ ?

ગાહા :-

જુજ્જઈ કાઝં સોગો મરણં જઈ હોજ્જ તીએ એક્કાએ ।

સાહારણમ્મિ મરણે કો સોગો કિં વ રુદ્ધેણ ? ॥૧૪૦॥

છાયા :-

યુજ્યતે કર્તું શોકઃ મરણં યદિ ભવેત્ તસ્યાઃ એકાક્યાઃ ।

સાધારણે મરણે કઃ શોકઃ કિં વા રુદિતેન ? ॥૧૪૦॥

અર્થ :- જો તે એકલીનું જ મરણ થયું હોય તો શોક કરવો યોગ્ય છે, બાકી સાધારણ મરણમાં કયો શોક ? અથવા મરણવડે શું ?

હિન્દી અનુવાદ :- યદિ ઇન અકેલી કી મૃત્યુ હુઈ હો તો શોક કરના યોગ્ય હૈ, અન્યથા સાધારણ મૃત્યુ મેં ક્યા શોક ? અથવા મૃત્યુ સે ક્યા ?

ગાહા :-

અહ-તણુ-તણગ-સંગય-જલ-લવ - તુલ્લમ્મિ જીવિયવ્વમ્મિ ।

નિદા-સંગે જં પુણ ઉટ્ઠિજ્જઈ તં મહચ્છરિયં ॥૧૪૧॥

છાયા :-

અતિ-તનુ-તૃણાન્ન-સહગત-જલ-લવ-તુલ્યે જીવિતલ્યે ।

નિદ્રા-સન્ને યદ્ પુનઃ ઉત્થીયતે તદ્ મહાશ્ચર્યમ્ ॥૧૪૧॥

અર્થ :- અત્યંત પતલા ઘાસના અગ્રભાગે લાગેલા પાણીનાં બિન્દુ સમાન જીવિતમાં નિદ્રાના સંગ ને પામેલો જે ઊઠે છે તે જ મહાન્ આશ્ચર્ય છે.

हिन्दी अनुवाद :- अत्यंत कृश तृण के अग्रभाग पर लगे पानी की बूंद तुल्य क्षणिक जीवन ही महान् आश्चर्य है।

गाथा :-

इय लोयस्स सरूवं कुविय-कयंतस्स एरिसं ददुं ।
देवि-मरणम्मि नर-वर ! न हु जुत्तं सोग-करणंति ॥१४२॥

छाया :-

इति लोकस्य स्वरूपं कुपित-कृतान्तस्येदृशं दृष्ट्वा ।
देवि-मरणे नर-वर ! न खलु युक्तं शोक करणमिति ॥१४२॥

अर्थ :- आ प्रमाणे लोकना स्वरूप ने तथा आवा प्रकारना कुपित थयेला कृतान्तने जोईने हे नरवर ! देवि मरण पामे छते शोक करवो तारे योग्य नथी.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार लोक के स्वरूप को देखकर तथा इस प्रकार कुपित कृतान्त को देखकर हे नरवर ! देवी की मृत्यु हो जाने पर आपको शोक करना उचित नहीं है।

देवीना मृत देहना अंतिम विधि

गाथा :-

एवं च बहु-विगणं भणिओ सो सुमइणा नर-वरिंदो ।
तक्कालुचियं सव्वं मइ-किच्चं कुणइ देवीए ॥१४३॥

छाया :-

एवं च बहु-विकल्पं भणितस्सः सुमतिना नरवरेन्द्रः ।
तत्कालोचितं सर्वं मृति-कृत्यं करोति देव्याः ॥१४३॥

अर्थ :- आ प्रमाणे सुमतिवडे बहु विकल्पोथी कहेवायेलो ते राजा ते काल उचित देवीनु सर्व मृत कार्य करे छे.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार सुमति द्वारा बहुत विकल्पों से प्रबोधित राजा तत्काल देवी के सर्व मृत कार्य को उचित रीति से करता है।

गाथा :-

कइवय दिणाइं परिचत्त-लोय-संभावणाइ-वावारो ।
गह-गहिओ इव चिट्ठइ, राया देवीए सोगेण ॥१४४॥

छाया :-

कतिपय-दिनानि परित्यक्त - लोक - संभावनादि व्यापारः ।
ग्रहगृहीत इव तिष्ठति राजा देव्याः शोकेन ॥१४४॥

अर्थ :- छोडी दीधा छे लोकना संभावनादि व्यापार एवो ते राजा केटलाय दिवस्सो सुधी ग्रह थी ग्रहण करायेलानी जेम देवीना शोकवडे रहे छे.

हिन्दी अनुवाद :- लोगों के साथ संभावनादि व्यापार छोड़कर बहुत दिनों तक ग्रह से ग्रसित की भांति राजा शोकमग्न रहता है। (देवी की मृत्यु के पश्चात्)

गाथा :-

सुमइ-मुहेहिं तावय नाणाविह-सोय-मोयण-पइहिं ।
बोहिज्जंतो गिराहिं जाओ कालेण गय-सोगो ॥१४५॥

छाया :-

सुमति-मुखैः तावत् नानाविध-शोक-मोचन-पटुभिः ।

बुध्यमानो गिराभिः जातः कालेन गत-शोकः ॥१४५॥

अर्थ :- विविधप्रकारना शोक ने दूर करवामां चतुर सुमतिनी प्रिय वाणीवड़े बोध पमाडातो केटलाक काले शोक रहित थयो.

हिन्दी अनुवाद :- विविध प्रकार के शोक को दूर करने में चतुर सुमति की प्रिय वाणी से बोधित कितने ही दिनों के बाद शोक दूर हुआ।

पुत्रनो ज्ञानाभ्यास

गाहा :-

नाऊण अटु-वरिसं ममं तओ गरुय-पुत्त-नेहेण ।

संगहिय उवज्झायं गाहेइ कलाण संदोहं ॥१४६॥

छाया :-

ज्ञात्वाऽष्ट वर्षं मम ततः गुरु-पुत्रस्नेहेन ।

संगृहित उपाध्यायं ग्रहितुं कलानां सन्दोहम् ॥१४६॥

अर्थ :- मने आठ वर्षनो जाणीने अत्यंत पुत्रना स्नेहवड़े कलाना रहस्योने ग्रहण करवा माटे उपाध्याय पासे रखायो.

हिन्दी अनुवाद :- आठ साल का मुझे जानकर पुत्र के अति स्नेह के वश कलाओं के रहस्यों को ग्रहण करने हेतु उपाध्याय के पास भेजा गया।

संतुष्ट पिता द्वारा पुत्र ने भेंट

गाहा :-

गहिए कला-कलावे गाम-सहस्सं तया महं दिन्नं ।

मह दंसणेण राया साहारइ देवि-विरहं ॥१४७॥

छाया :-

गृहिते कला - कलापे ग्राम - सहस्रं तदा मह्यम् दत्तम् ।

मम दर्शनेन राजा संधारयति देवि-विरहमपि ॥१४७॥

अर्थ :- कला समूह ग्रहण करते छते पितावड़े मने भेटमा हजार गामों अपाया अने मने जोवाथी राजा देविना विरहने पण भूली जता हता.

हिन्दी अनुवाद :- संपूर्ण कला ग्रहण करने पर पिताजी द्वारा मुझे हजार गाँव भेंट में दिये गये और मुझे देखने पर राजा देवी के विरह को भी भूल जाते थे।

गाहा :-

अह अन्नया कयाइवि अत्थाण-गयस्स राइणो ज्ञत्ति ।

पणमिय दुवारवालो वज्जरइ सूहवो एवं ॥१४८॥

छाया :-

अथ अन्यदा कदाचिदपि आस्थान-गतस्य राज्ञः स्मृतिति ।

प्रणम्य द्वारपालः कथयति सूभगः एवम् ॥१४८॥

अर्थ :- हवे क्यारेक कोईवार सभामण्डपमां रहेला राजाने जल्दीथी नमस्कार करीने सुभग द्वारपाल आ प्रमाणे कहे छे.

हिन्दी अनुवाद :- एक बार सभामण्डप में विराजित राजा को शीघ्रता से नमस्कार करके सुभग नामक द्वारपाल इस तरह कहता है।

दूतनुं आगमन

गाहा :-

चंपापुरीओ सामिय ! महंतओ कित्तिधम्म-नरवइणो ।
देवस्स दंसणत्थं चिट्ठइ पडिहार-भूमिआ ॥१४९॥

छाया :-

चम्पापुरीतः स्वामिन् ! महान्-कीर्तिधर्म-नरपतेः ।
देवस्य दर्शनार्थं तिष्ठति प्रतिहार-भूम्याम् ॥१४९॥

अर्थ :- “हे स्वामिन् ! चम्पापुरीथी महान् कीर्तिधर्मराजानो दूत आपना दर्शनमाटे द्वार पर उभो छे.”

हिन्दी अनुवाद :- हे स्वामिन् ! चम्पापुरी से महान् कीर्तिधर्मराजा का दूत आपके दर्शनार्थ द्वार पर खड़ा है।

गाहा :-

सिग्घं पवेससुत्ति य भणिए सो राइणा अणुन्नाओ ।
आगम्म विहिय-विणओ उवविट्ठो उचिय-ठाणम्मि ॥१५०॥

छाया :-

शीघ्रं प्रवेशयेति च भणिते स राजा अनुज्ञातः ।
आगम्य विहित - विनय उपविष्ट उचित-स्थाने ॥१५०॥

अर्थ :- “जल्दी आवे” ए प्रमाणे राजावड़े अनुज्ञा पामेलो ते कहेवाये छते आवीने करेला विनयवालो उचित स्थान पर बेठो.

हिन्दी अनुवाद :- “शीघ्र आवे” इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त कर आया हुआ विनयान्वित दूत उचित स्थान पर बैठा।

गाहा :-

तंबोलाइ-पयच्छण-पुब्बं सो राइणा समुल्लविओ ।
आगमण-कारणं भो ! साहसु तो भणिउमाढत्तो ॥१५१॥

छाया :-

ताम्बूलादि - प्रदान - पूर्व सः राजा समुल्लापितः ।
आगमन - कारणं भो ! कथय ततो भणितुमारब्धः ॥१५१॥

अर्थ :- ताम्बूलादि आपवा पूर्वक ते राजावड़े कहेवायो - “हे महानुभाव ! तारा आगमननुं कारण कहे ? त्यारपछी ते कहेवा माटे तैयार थयो.”

हिन्दी अनुवाद :- ताम्बूलादि देने के पश्चात् राजा द्वारा कहा गया - हे महानुभाव तेरे आगमन का कारण क्या है ? मुझे कहो; तत्पश्चात् वह कहने को तत्पर हुआ।

દૂત દ્વારા વૃત્તાંત કથન

ગાહા :-

ચંપાણ પુર-વરીણ સુપસિદ્ધો ચેવ દેવ-પાયાણં ।
વિત્થારિય-વિમલ-કિત્તી રાયા સિરિ-કિત્તિધમ્મોઽસ્તિ ॥૧૫૨॥

છાયા :-

ચમ્પાયાં પુરવર્યા સુપ્રસિદ્ધશ્ચૈવ દેવ-પાદાનામ્ ।
વિસ્તારિત - વિમલ - કીર્તિ રાજા શ્રી-કીર્તિધર્મોઽસ્તિ ॥૧૫૨॥

અર્થ :- નગરીઓ માં શ્રેષ્ઠ ચમ્પાપુરીમાં વિસ્તરિત વિમલ કીર્તિવાલો કીર્તિધર્મ નામનો રાજા છે.

હિન્દી અનુવાદ :- શ્રેષ્ઠ ચંપાપુરી મેં ફેલી હુઈ નિર્મલ કીર્તિવાલા કીર્તિધર્મ નામ કા રાજા હૈ।

ગાહા :-

નિજ્જિય-સુરિંદ-સુંદરિ રૂવાતિસયા સમત્થ-મહિલાણ ।
અબ્બહિયા સે દેવી કિત્તિમઈ લોય-વિક્કાયા ॥૧૫૩॥

છાયા :-

નિર્જિત-સુરેન્દ્ર-સુંદરિ-રૂપાતિશયા સમસ્ત મહિલાનામ્ ।
અભ્યધિકા તસ્ય દેવી કીર્તિમતી લોક-વિખ્યાતા ॥૧૫૩॥

અર્થ :- જિત્યા છે દેવાંગના ઓના રૂપ તથા સમસ્ત સ્ત્રીઓમાં રૂપાતિશાયવાલી લોકમાં વિખ્યાત તે રાજાને કીર્તિમતી નામની દેવી છે.

હિન્દી અનુવાદ :- દેવાઙ્ગનાઓં કે રૂપ કો બી તિરસ્કૃત કરનેવાલી તથા સમ્પૂર્ણ સ્ત્રિયોં મેં અતિશય રૂપવાન્ લોક મેં પ્રખ્યાત કીર્તિમતી નામ કી દેવી હૈ।

રાજપુત્રી કનકવતી

ગાહા :-

તીય ધૂયા સોહગ-રૂવ-વિણ્ણાણ ગારવગ્ધવિયા ।
પાયાલ-કન્નય-સમા કણયવઈ નામ વર-કન્ના ॥૧૫૪॥

છાયા :-

તસ્યા દુહિતા સૌભાગ્ય-રૂપ-વિજ્ઞાન-ગૌરવાન્વિતા ।
પાતાલ-કન્યા-સમા કનકવતી નામા વર-કન્યા ॥૧૫૪॥

અર્થ :- તેળીની પુત્રી સૌભાગ્યાદિ રૂપ અને વિજ્ઞાનથી ગૌરવવાલી પાતાલ કન્યા જેવી કનકવતી નામની શ્રેષ્ઠ કન્યા છે.

હિન્દી અનુવાદ :- ઉન્હેં સૌભાગ્યાદિ રૂપ સમ્પત્તિ સે શોભિત પાતાલ કન્યા જૈસી કન્યાઓં મેં શ્રેષ્ઠ કનકવતી નામ કી પુત્રી હૈં।

ગાહા :-

સંપત્ત-જોલ્લણા સા આભરણ-વિભૂસિયા પિડ-સયાસે ।
પટ્ટવિયા માઝણ તદુચિય-વર-દાણ-અટ્ટાણ ॥૧૫૫॥

छाया :-

सम्प्राप्त-यौवना सा आभरण-विभूषिता-पितृ-सकाशे ।
प्रस्थापिता मात्रा तदुचित-वर-दानार्थम् ॥१५५॥

अर्थ :- प्राप्त थयेला यौवनवाली, आभरणथी विभूषित तेने माता वडे उचित वर जोवा माटे पिता पासे मोकलावाड.

हिन्दी अनुवाद :- नव यौवना, आभरणों से अलंकृत वह पुत्री माता द्वारा उचित पति के लिए पिता के पास भेजी गयी।

गाथा :-

आगम्य पाय-पडिया पिउणा सा सहरिसं निउच्छंगे ।
विणिवेसिय अवगूढा भणिया य इमं तु सा कन्ना ॥१५६॥

छाया :-

आगम्य पाद-पतिता पित्रा सा सहर्ष निजोत्संगे ।
विनिवेश्य अवगूढा भणिता च इयं तु सा कन्या ॥१५६॥

अर्थ :- आवीने पगे पडेली ते पितावडे हर्षसहित पोताना खोणामां बेसाडाइ अने बेसाडीने आ रीते कन्या कहेवायी.

हिन्दी अनुवाद :- पिता के चरण स्पर्श करती हुई वह बाला हर्षयुक्त पिता द्वारा अपनी गोदी में बैठाई गयी और वे पुत्री से कहने लगे।

गाथा :-

पुत्ति ! निय-हियय-इट्टं सामंत महंतयाण मज्झमि ।
साहसु जेण तुहं सो किज्जइ भत्ता किमन्नेण ? ॥१५७॥

छाया :-

पुत्रि ! निज-हृदयेष्टं सामन्त महन्तकानां मध्ये ।
कथय येन तव स क्रियते भर्ता, किमन्येन ॥१५७॥

अर्थ :- हे पुत्री ! सामन्त महन्तकोनी मध्यमां तारे पोताने जे हृदयेष्ट होय ते कहे जेथी तारो ते पति कराय, बीजावडे शुं ?

हिन्दी अनुवाद :- हे पुत्री ! सामन्त और महन्तों के मध्य में तुझे जो इष्ट है वह बोल। जिससे तेरा पति वह किया जाय। औरों से क्या मतलब।

गाथा :-

एवं पिउणा भणिता लज्जाए अहोमुही ठिया बाला ।
पुणरुत्तं पुट्ठावि हु न किंचि पडिउत्तरं देइ ॥१५८॥

छाया :-

एवं पित्रा भणिता लज्जया अधोमुखी स्थिता बाला ।
पुनरुत्तं (भूयः) पृष्टापि खलु न किञ्चिद् प्रत्युत्तरं ददाति ॥१५८॥

अर्थ :- आ प्रमाणे पितावडे कहेवायेली लज्जा वडे अधोमुखी ते बाला रही. पुछायेली पण ते कांइज प्रत्युत्तर आपती नथी.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार पिता द्वारा कही हुई वह बाला लज्जा से अधोमुखी हुई, किन्तु पूछने पर भी उसने कुछ प्रत्युत्तर नहीं दिया।

गाथा :-

तो चिंतितुं पयत्तो एया लज्जालुया इमा वरई ।

न हु सक्कइ वज्जरिउं एसो मह ताय ! इट्ठोत्ति ॥१५९॥

छाया :-

ततः चिंतयितुं प्रयतः एषा लज्जालुता इयं वराली ।

न खलु शक्नोति कथयितुं एषः मम तात ! इष्ट इति ॥१५९॥

अर्थ :- त्वारपछी राजा विचारवा लाग्या आ शरमाल बीचारी शरमना मारे कहेवा मारे समर्थ नथी, आथी मारे ज एनो इष्ट पति करी आपवो पडशे.

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् राजा सोचने लगे कि यह बेचारी लज्जावश मुझसे कहने में समर्थ नहीं है अतः मुझे ही इसका इष्ट पति करना होगा।

गाथा :-

ता चिंतेमि सयंचिय अणुरूवमिमीए पवर-भत्तारं ।

विज्जाण-रूव-संपय-कलियं वर-वंस-उप्पन्नं ॥१६०॥

छाया :-

तस्मात् चिन्तयामि स्वयमेव अनुरूप-मस्यै प्रवर-भर्तारं ।

विज्ञात-रूप-सम्पत्-कलितं वर-वंशोत्पन्नम् ॥१६०॥

अर्थ :- त्वारपछी स्वयम् ज विचारे छे, आणीने अनुरूप श्रेष्ठ-रूपसम्पत्तिथी युक्त श्रेष्ठकुलमां उत्पन्न थयेलो श्रेष्ठ पति कोण छे ?

हिन्दी अनुवाद :- फिर स्वयं ही विचारते हैं। इनके अनुरूप श्रेष्ठ रूप-सम्पत्ति से युक्त और श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ इनका पति कौन है ?

गाथा :-

खणमेगमच्छिऊणं राया चिंताउरो भणइ तत्तो ।

पुत्ति ! तुह रूव-सरिसो भत्ता लद्धो मए इण्हं ॥१६१॥

छाया :-

क्षणमेक आसित्वा राजा चिन्तातुरो भणति ततः ।

पुत्रि ! तव रूप-सदृशो भर्ता लब्धो मया इदानीम् ॥१६१॥

अर्थ :- क्षण एक विचारीने चिन्तातुर एवो राजा कहे छे. पुत्रि ! तारा रूप-समान तारो पति अत्वारे मारा वड़े मेलवायो छे.

हिन्दी अनुवाद :- एक क्षण सोचने के पश्चात् चिन्तातुर राजा कहता है - हे पुत्री ! तेरे रूप के तुल्य तेरा पति मैंने अभी निश्चित किया है।

कनकवतीना स्वामी रूपे सुग्रीवनी पसंदगा

गाथा :-

सिद्धत्थपुरे राया सुग्रीवो नाम मह परं मित्तं ।

तस्स तुमं गच्छ लहुं सयंवरा, एत्थ किं बहुणा ? ॥१६२॥

छाया :-

सिद्धार्थपुरे राजा सुग्रीवो नाम मम परं मित्रम् ।

तस्य त्वं गच्छ लघु स्वयंवरा, अत्र किं बहुणा ? ॥१६२॥

अर्थ :- सिद्धार्थपुरमां राजा सुग्रीव मातो परम मित्र छे. जल्दीथी स्वयंवरा तेनी पासे तुं जा, अहीं घणावड़े थुं ?

हिन्दी अनुवाद :- सिद्धार्थपुर का राजा सुग्रीव मेरा परम मित्र है। स्वयंवरा ऐसी तू शीघ्र ही उनके पास जा, इधर बहुतों से क्या काम है ?

गाहा :-

एवं च भणियमेत्ते सा कन्ना देव ! तुम्ह नामेण ।

निसुएणं चिय जाया हरिस-वसुल्लसिय-रोमंचा ॥१६३॥

छाया :-

एवं च भणितमात्रे सा कन्या देव ! तव नाम्ना ।

निशम्य एव जाता हर्ष-वशोल्लसितरोमांचा ॥१६३॥

अर्थ :- अने आ प्रमाणे कहेवामात्रमां ते कन्या, हे देव ! तमारा नाम मात्रथी ज हर्षथी उल्लसित रोमाञ्चवाली थी !

हिन्दी अनुवाद :- और इस प्रकार कहने मात्र से वह कन्या, हे देव ! आपके नाम मात्र से ही हर्ष से विकसित रोमाञ्चवाली हुई।

गाहा :-

नाऊण तीए भावं राया संपेक्खऊण मह वयणं ।

वज्जरइ, तं महाबल ! वच्चसु सिद्धत्थनयरम्मि ॥१६४॥

घेतुं सयंवरमिमं कणगवइं भूरि-भूइ-संजुत्तं ।

कइवय - बल - संजुत्तो सोहण-तिहि-करण-नक्खत्तो ॥१६५॥

छाया :-

ज्ञात्वा तस्या भावं राजा संपेक्ष्य मम वदनं ।

कथयति, त्वं महाबल ! व्रज सिद्धार्थनगरे ॥१६४॥

गृहीत्वा स्वयंवरं इमां कनकवतिं भूरि-भूति-संयुक्तां ।

कतिपय-बल-संयुक्तः शोभन-तिथि-करण-नक्षत्रः ॥१६५॥

अर्थ :- राजा तेणीनां भावने जाणीने मारा मुख सामे जोईने कह्युं-“हे महाबल ! सिद्धार्थनगरमां घणी सम्पत्तिथी युक्त, आ स्वयंवरा कनकवती लइने केटलाक सैन्यथी युक्त श्रेष्ठ तिथि-वार-नक्षत्रमां तुं जा.”

हिन्दी अनुवाद :- राजा ने उनके भाव को जानकर मेरे सामने देखकर कहा कि “हे महाबल ! इस स्वयंवरा कनकवती को लेकर बहुत सम्पत्ति और सैन्य से युक्त श्रेष्ठ मुहूर्तवाले तिथि-वार और नक्षत्र में तू सिद्धार्थपुर नगर में जा।”

गाहा :-

जं आणवेसि भणिउं तत्तो हं तं गहीय संचलिओ ।

जाव य कमेण एत्तो जोयणमेत्तम्मि संपत्तो ॥१६६॥

છાયા :-

યદ્ આજ્ઞાપયસિ ભણિત્વા તતોઽહં તાં ગૃહીત્વા સઙ્ચલિતઃ ।

યાવચ્ચ ક્રમેણ ઇતો યોજનમાત્રે સમ્પ્રાપ્તઃ ॥૧૬૬॥

અર્થ :- ‘જે આપની આજ્ઞા’, ૯ પ્રમાણે કહીને ત્યારપછી હું તેણીને લઈને નિકલ્યો અને ક્રમવડે યોજનમાત્ર દૂર આવી ગયો.

હિન્દી અનુવાદ :- ‘આપકી આજ્ઞા પ્રમાણ’ इस प्रकार कहकर, कन्या को लेकर निकला हुआ मैं यहाँ से योजनमात्र दूर आ गया हूँ।

ગાહા :-

અજ્જ રયણી-વિરામે કઙ્કવય-તુરેહિં વેગવંતેહિં ।

ઊગિગલિય આગઓ હં તુમ્હાણ પિયં નિવેદમિ ॥૧૬૭॥

છાયા :-

અથ રજની-વિરામે કતિપય-તુરગૈઃ વેગવન્તૈઃ ।

અગ્રે ભૂત્વા આગતોઽહં યુષ્માકમપિ યદ્ નિવેદયામિ ॥૧૬૭॥

અર્થ :- રાત પૂર્ણ થયે કેટલાક વેગવન્ત ઘોડાઓ વડે આગલ થઈને આવેલો છું જે હું તમને જણાવું છું.

હિન્દી અનુવાદ :- रात्रि पूर्ण होने पर वेगवन्त अश्वों द्वारा मैं यहाँ पर आया हूँ जो आपको विदित करता हूँ।

ગાહા :-

દેવ ! મહમેયમાગમણ-કારણં પુચ્છયં હિ જં તુમૅ ।

એવં ચવત્થિયમ્મિ સંપદ્ દેવો પમાણંતિ ॥૧૬૮॥

છાયા :-

દેવ ! મામેતમાગમન કારણં પૃષ્ઠં ખલુ યદ્ ત્વયા ।

એવં ચ અવસ્થિતે સમ્પ્રતિઃ પ્રમાણમિતિ ॥૧૬૮॥

અર્થ :- હે દેવ ! તમારા વડે મારા આ આગમનનું કારણ પૂછાયુ તે આ છે હવે આપ પ્રમાણ છો.

હિન્દી अनुवाद :- हे देव ! आप से मेरे आगमन का जो कारण पूछा गया वह यह है, अतः आप इसमें प्रमाण हो।”

ગાહા :-

હરિસાઝરિય-હિયઓ અહ રાયા ભળઈ પરિયણં નિયયં ।

મહયા વિચ્છ્રદ્ધેણં નયરે કન્નં પવેસેહ ॥૧૬૯॥

છાયા :-

હર્ષાતુરિત હૃદયો અથ રાજા ભળતિ પરિજનં નિજકમ્ ।

મહતા વિચ્છ્રદેન નગરે કન્યાં પ્રવેશય ॥૧૬૯॥

અર્થ :- હર્ષ થી આતુરિત હૃદયવાળો રાજા પોતાના પરિજનને કહે છે. “મોટા મહોત્સવ વડે નગર માં કન્યાનો પ્રવેશ કરાવો.”

हिन्दी अनुवाद :- हर्ष से आतुरित हृदयवाले राजा ने अपने परिजनों को कहा - “शीघ्र ही बड़े महोत्सव के साथ नगर में कन्या का प्रवेश कराया जाये।”

सुग्रीव - कनकवतीनो विवाह

गाहा :-

तो परियणेण सम्मं तहत्ति संपाडियम्मि वयणम्मि ।
सोहण-लग्गे रत्ना परिणीया तत्थ कणगवइ ॥१७०॥

छाया :-

ततः परिजनेन सम्यक् तथा इति संपादिते वचने ।
शोभन-लग्ने राज्ञा परिणिता तत्र कनकवती ॥१७०॥

अर्थ :- तयार पछी परिजन वड़े सारी रीते ते वचन स्वीकारे छते शुभ लग्न मां राजा वड़े ते कनकवती परणाई.

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् परिजनों द्वारा अच्छी तरह से वचन स्वीकृत होने पर शुभ मुहूर्त में राजा का कनकवती के साथ विवाह हुआ।

गाहा :-

सा रत्नो कणगवई कालेण अईव वल्लहा जाया ।
मह माऊए ठाणे विहिया अह पट्ट-बद्धा सा ॥१७१॥

छाया :-

सा राज्ञः कनकवती कालेन अतीव वल्लभा जाता ।
मम मातुः स्थाने विहिता अथ पट्ट-बद्धा सा ॥१७१॥

अर्थ :- ते कनकवती कालक्रमे राजाने अत्यंत प्रिय थी. अने ते मांरी माताना स्थाने पटराणी बनी.

हिन्दी अनुवाद :- वह कनकवती दिन जाने पर राजा की अति प्रिय बन गई और मेरी माता के स्थान पर पटरानी बनी।

गाहा :-

अइवल्लहंपि वीसरइ माणूसं देस-काल-अंतरियं ।
वल्ली-समं हि पिम्मं जं आसन्नं तहिं चइइ ॥१७२॥

छाया :-

अतिवल्लभमपि विस्मरति मानुष्यं देश-कालान्तरितं ।
वल्ली-समं खलु प्रेम यद् आसन्नं तं आरोहति ॥१७२॥

अर्थ :- प्रेम ज निश्चे एवो छे, के ते देश-कालना दूरत्व थी अतिप्रियने भूली जाय छे, अने वेलडीनी जेम ते नजीकना पर वली जाय छे.

हिन्दी अनुवाद :- प्रेम ही निश्चय से ऐसा है कि जो देश-काल के दूरत्व से अतिप्रिय को भी भूल जाता है और लता की तरह पास वाली चीज पर मुड़ जाता है।

गाहा :-

वच्चंति वासराइ मह पिउणो तीए गाढ-रत्तस्स ।
सिढिलीकय-सेसोरोह-रमणि-गमणाइ-चेट्टस्स ॥१७३॥

छाया :-

व्रजन्ति वासराणि मम पितुः तस्यां गाढ रक्तवतायां ।

शीथिलीकृत-शेषावरोध-रमणि-गमनादि

चेष्टस्य ॥१७३॥

अर्थ :- तेणी पर गाठ अनुरागी शेष अन्तःपुरनी रमणिओ पासले गमनादि चेष्टापण स्थगित करी दीघेल मारा पिताना केटलाक दीवसो पत्सार थाय छे. हिन्दी अनुवाद :- कनकवती पर अत्यधिक राग होने से शेष अन्तःपुर की रमणियों के पास जाना भी बंद करनेवाले मेरे पिताजी के कितने ही दिन बीत गये।

सुरभ पुत्र जन्म

गाहा :-

अह अन्नया क्याइवि कणगवईए सुओ समुप्पन्नो ।

सुरहोत्ति विहिय-नामो पत्तो सो कुमर-भावम्मि ॥१७४॥

छाया :-

अथ अन्यदा कदाचिदपि कनकवत्याः सुतः समुत्पन्नः ।

सुरभ इति विहित-नाम प्राप्तः स कुमार-भावे ॥१७४॥

अर्थ :- हवे कोईकवार कनकवतीने पुत्र उत्पन्न थयो. “सुरभ” ए प्रमाणे तेनु नाम राख्यु. अने ते ‘सुरभ’, कुमार भावने पाव्यो.

हिन्दी अनुवाद :- कनकवती को पुत्र उत्पन्न हुआ और उनका “सुरभ” नाम रखा गया। अब वह सुरभ कुमारत्व को प्राप्त हुआ अर्थात् बड़ा हुआ।

गाहा :-

अन्न-दियहम्मि एयं एगंते भणइ कणगवई देवी ।

जुवराय-पए किं नवि अहिसिच्चइ देव ! मे पुत्तो ? ॥१७५॥

छाया :-

अन्य-दिने एतं एकान्ते भणति कनकवती देवी ।

युवराज पदे किं नापि अभिसिच्यते देव ! मम पुत्रः ? ॥१७५॥

अर्थ :- कनकवती देवी अन्यदिवसो एकान्तमां राजाने कहे छे. ‘हे देव ! मारा पुत्र नो युवराज पद पर थुं अभिषेक न कराय ?’

हिन्दी अनुवाद :- कनकवती देवी एक दिन एकान्त में राजा को कहती है - हे देव ! मेरे पुत्र का युवराज पद पर अभिषेक क्यों न किया जाये ?

मोटा पुत्र सुप्रतिष्ठना अवगणना

गाहा :-

तो भणइ नर-वरिंदो जेट्टे पुत्तम्मि सुप्पइट्टम्मि ।

विज्जंते न हू जुत्तं जुवरायं ठाविउं सुरहं ॥१७६॥

छाया :-

ततो भणति नर-वरेन्द्रः ज्येष्ठे पुत्रे सुप्रतिष्ठे ।

विद्यन्ते न खलु युक्तं युवराजं स्थापयितुं सुरभम् ॥१७६॥

અર્થ :- ત્યારબાદ રાજા કહે છે “જ્યેષ્ઠ પુત્ર સુપ્રતિષ્ઠ હોતે છતે ‘સુરભ’ ને યુવરાજ પદ પર સ્થાપવા માટે યોગ્ય ન ગણાય”.

હિન્દી અનુવાદ :- તત્પશ્ચાત્ રાજા કહતા હૈ, જ્યેષ્ઠ પુત્ર સુપ્રતિષ્ઠ કે હોને પર સુરભ કો યુવરાજ પદ પર સ્થાપિત કરના ઁચિત નહૈં હૈ.

પુત્ર સુરભના યુવરાજ પદની પ્રાર્થના

ગાહા :-

ભળિયં દેવીએ તઓ જેઠુ-ઢુવળે નિહોડઁ કો ણુ ? ।

જડ તુજ્ઞ અહં દડયા તા સુરહં કુણસુ જુયરાયં ॥૧૭૭॥

છાયા :-

ભળિતં દેવ્યાસ્તતઃ જ્યેષ્ઠ-સ્થાપને નિવારયતુ કઃ નુ ?

યદિ તવ અહં દયિતા તદા સુરભં કુરુ યુવરાજં ॥૧૭૭॥

અર્થ :- ત્યારપછી દેવીથી કહેવાયુ, “જ્યેષ્ઠના સ્થાપનમાં અહીં અટકાવનાર કોણ છે ? જો હું તમારી પત્ની હોઁ તો સુરભને યુવરાજ બનાવો.”

હિન્દી અનુવાદ :- પુનઃ દેવી ને કહા - “જ્યેષ્ઠ કે સ્થાપન મેં યહૈં આપ કો રોકનેવાલા કૌન હૈ? યદિ મૈં આપકી પત્ની હૂં તો સુરભ કો યુવરાજ પદ પ્રદાન કીજિએ”

ગાહા :-

તાહે રક્ષા ભળિયં સુદઠુ પિયા તં સુલોચને ! મજ્ઞ ।

કિંતુ ઇમસસઽનુરક્તા સામંત-મહંતયા સઁવ્વે ॥૧૭૮॥

છાયા :-

તદા રાજા ભળિતં સુષ્ટુ પ્રિયા ત્વં સુલોચને ! મમ ।

કિન્તુ અસ્યાઽનુરક્તા સામન્ત-મહન્તઃ સર્વે ॥૧૭૮॥

અર્થ :- ત્યારે રાજા વડે કહેવાયુ-“હે પ્રિયા ! સુલોચને ! મને તે સારુ કહ્યુ. પણ સુપ્રતિષ્ઠને સામન્તો-મહન્તો બધા જ સ્ખૂબ ઇચ્છે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- કિન્તુ ઁસ રાજા ઢ્વારા કહા ગયા કિ “હે પ્રિયે ! સુલોચને ! તૂને મુઝે ઠીક કહા, સુપ્રતિષ્ઠ કો સામન્તાદિ સભી જન બહુત ઇચ્છતે હૈં.

ગાહા :-

તહ ઁસો સુસમત્યો ઁવં વિહિએ વિહેજ્જ તં કિપિ ।

અવમાણિઓ હુ જેણં મમાવિ રજ્જં અવહરેજ્જા ॥૧૭૯॥

છાયા :-

તથા ઇષઃ સુસમર્થ ઁવં વિહિતે વિદધ્યાત્ તં કિમપિ ।

અપમાનિતઃ ઁલુ યેન મમાપિ રાજ્યં અપહરેત્ ॥૧૭૯॥

અર્થ :- તથા આ અત્યંતસમર્થ છે, તેનુ આ પ્રમાણે કાંડપણ કરાયે છતે અપમાનિત થયેલ તે મારુ રાજ્ય પણ લઈ લે.

હિન્દી અનુવાદ :- તથા વહ અતિસમર્થ ભી હૈ. ઁસકા ઁસ પ્રકાર કુછ અનિષ્ટ કિયા જાય તો વહ અપમાનિત મેરા રાજ્ય ભી લે લેવે.”

गाहा :-

तो भणइ हसिय देवी एरिस-सत्तेण कह तुमं विहिणा ।
पिययम ! राया विहिओ नवरि किराडो कओ होन्तो ? ॥१८०॥

छाया :-

ततः भणति हसित्वा देवी ईदृश-सत्त्वेन कथं त्वं विधिना ।
प्रीयतम ! राजा विहितः अन्यथा किरातः कुतःकुतः अभविष्यत् ? ॥१८०॥

अर्थ :- तेथी देवी हत्तीने कहे छे, “विधातावडे आवा प्रकारना सत्त्ववाळा एवा
आपने राजा केम बनावाया ? वली हे प्रियतम ! आप किरात क्यांथी थया ?
हिन्दी अनुवाद :- तब देवी मधुर वाणी से कहती है, “इस प्रकार निःसत्त्ववाले आपको
विधाता ने राजा कैसे बनाया ? पुनः हे प्रियतम ! आप किरात कैसे हुए ?

राणीनी अधप्रता

गाहा :-

जेणेव सुणइदो एरिसओ उक्कडो पयावेण ।
तेणेव इमं सिग्घं कट्ट-हरे खिवसु जत्तेण ॥१८१॥

छाया :-

येनैव सुप्रतिष्ठः ईदृश उत्कट-प्रतापेन ।
तेनैव इमं शीघ्रं काष्ठ-गृहे क्षिपस्व यत्नेन ॥१८१॥

अर्थ :- जे उत्कृष्ट प्रताप वडे आवा प्रकारनो सुप्रतिष्ठ थयो छे. तेथी यत्नवडे
जल्दी थी तेने कारागृहमां नांखो.

हिन्दी अनुवाद :- उत्कृष्ट प्रतापवाला सुप्रतिष्ठ जैसे हुआ है, उसी तरह यत्न से उसे शीघ्र ही
कारागृह में डाल दीजिए।

गाहा :-

तत्तो य मज्झ पुत्तं जुवरायं ठाविउं पयत्तेण ।
अच्छसु विगयासंको रज्जं च ममं च माणंतो ॥१८२॥

छाया :-

ततश्च मम पुत्रं युवराजं स्थापयितुं प्रयत्नेन ।
आस्यताम् विगताशंकः राज्यं च माम् च मन्यमान ॥१८२॥

अर्थ :- त्वारपछी प्रयत्नपूर्वक निःशंक एवा आप मारा पुत्रने युवराज पद पर
स्थापन करो अने मारू मानो.”

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् निःशंकित आप मेरे पुत्र को युवराज पद पर स्थापित करो और मेरा
कहना सुनो।”

गाहा :-

एवं देवी-वयणं सोउं पडिउत्तरं अदाऊणं ।
राया समुट्ठिऊणं अत्थाणे गंतुमुवविट्ठो ॥१८३॥

छाया :-

एवं देवी-वचनं श्रुत्वा प्रात्युतरं अदत्त्वा ।
राजा समुत्थाय आस्थाने गत्वोपविष्टः ॥१८३॥

अर्थ :- आ प्रमाणे देवी ना वचन सांभलीने प्रत्युत्तर आप्यावगर राजा त्यांथी उठीने सभामंडपमा जईने बेठा.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार देवी के वचन को सुनकर प्रत्युत्तर दिये बिना राजा वहाँ से उठकर सभामंडप में जा बैठा।

गाहा :-

एयं च देवी-वयणं सूहृद्विया-नामियाए चेडीए ।
पच्छन्ने सोऊणं सव्वं धणदेव ! मह सिट्ठं ॥१८४॥

छाया :-

एवं च देवी-वचनं सुभगिका-नाम्ना चेदया ।
प्रच्छन्ने श्रुत्वा सर्वं धनदेव ! मह्यम् शिष्टम् ॥१८४॥

अर्थ :- आ प्रमाणे देवीना वचन सांभलीने सुभगिका नामनी दासीवडे प्रच्छन्न रीते हे ! धनदेव ! मने बधु कहेवायु.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार देवी के वचन सुनकर हे धनदेव ! सुभगिका नाम की दासी द्वारा गुप्तता से मुझे सब कहा गया।

सुप्रतिष्ठनुं शुभाशुभ चिंतन

गाहा :-

तं सोउं मह विगप्पो चित्ते एयारिसो समुप्पन्नो ।
किं कणगवईए वुत्तो करेज्ज एवं पिया मज्झ ? ॥१८५॥

छाया :-

तं श्रुत्वा मह्यम् विकल्पः चित्ते एतादृशः समुत्पन्नः ।
किं कनकवत्या उक्तः कुर्यात् एवं पित्रा मम ? ॥१८५॥

अर्थ :- ते सांभलीने मारा चित्तमां विकल्प उत्पन्न थयो - शुं मारा पितावडे, कनकवतीवडे कहेवायेलु कराथो ?

हिन्दी अनुवाद :- वह सुनकर मेरे चित्त में विकल्प उत्पन्न हुए - क्या मेरे पिताजी कनकवती की बात का स्वीकार करेंगे ?

गाहा :- अहवा ।

न गणंति पुव्व-जेहं न य नीइ नेय लोय-अववायं ।
न य भावि-आवयाओ पुरिसा महिलाण आयत्ता ॥१८६॥

छाया :-

न गणयंति पूर्व-स्नेहं न च नीतिं न च लोकापवादं ।
न च भावि आपदः पुरुषाः महिलानां आयत्ता ॥१८६॥

अर्थ :- महिला ने आधीन पुरुषो पूर्वना स्नेहने गणता नथी नीतिने गणता नथी लोक अपवादने तथा भाविमां थनारी आपत्तिने पण गणता नथी.

हिन्दी अनुवाद :- महिला के आधीन पुरुष पूर्व के स्नेह को याद नहीं करते, नीति एवं लोकोपवाद से डरते नहीं हैं तथा भावी आपत्ति को भी देखते नहीं हैं।

गाहा :-

ता जा न किंपि अन्नं देवी-वयणाओ मह पिआ कुणइ ।
ताव अहिद्वेमि सयं रज्जं, पियरं विणासेत्ता ॥१८७॥

छाया :-

तावद् यावद् न किमपि अन्यत् देवी-वचनात् मम पिता करोति ।
तावद् अधितिष्ठामि स्वयं राज्यं पितरं विनाशयित्वा ॥१८७॥

अर्थ :- तेथी देवीना वचनथी मारा पिता बीजुं कांई पण न करे त्यांसुधीमां हूं
स्वयं पितानो विनाश करीने राज्य नो अधिष्ठा बनी जाऊं.

हिन्दी अनुवाद :- अतः देवी के वचन से प्रेरित मेरे पिताजी मेरा कुछ अनिष्ट करें उनके पहले
ही मैं स्वयं पिता का विनाश करके राज्य का स्वामी बन जाऊँ।

गाहा :-

अहव न एयं जुत्तं विवेय-जुत्तस्स मज्झ काउं जे ।
ता बंधिऊण पियरं कट्ट-हर-गयं अणुचरामि ॥१८८॥

छाया :-

अथवा न एतद् युक्तं विवेक युक्तस्य मम कर्तुं यद् ।
तस्माद् बद्ध्वा पितरं काष्ठ-गृह-गतं अनुचरामि ॥१८८॥

अर्थ :- अथवा विवेकयुक्त एवा मने आवु करवा माटे योग्य नथी तेथी पिताने
बांधीने काष्ठगृहमां नांखु.

हिन्दी अनुवाद :- अथवा विवेकयुक्त मुझे ऐसा करना उचित नहीं है, अतः पिताजी को
बांधकर काष्ठगृह में डाल दूँ।

गाहा :-

किं वा कणगवई चिय सह सुरहेणं नयामि जम-वयणे ।
किं वा कट्ट-हरम्मि दोन्निवि घत्तेमि बंधेउं ? ॥१८९॥

छाया :-

किं वा कनकवतिं एव सह सुरभेन नयामि यम-सदने ।
किं वा काष्ठ-गृहे द्वयोरपि घातयामि बद्ध्वा ? ॥१८९॥

अर्थ :- अथवा शुं सुरभ साथे ज कनकवतिने यमसदनमां पंढोचाडु ? अथवा
शुं बद्धेने बांधीने काष्ठ गृहमां नांखुं ? के घात करू ?

हिन्दी अनुवाद :- अथवा क्या सुरभ के साथ ही कनकवती को यमसदन में भेजूं ? अथवा
क्या दोनों को बांधकर काष्ठगृह में डालूँ ? या घात करूँ ?

गाहा :-

अहवा किं मह इमिणा प्रेक्खामो ताव जं पिआ कुणइ ।
अदिट्ठ-पाणियम्मि न हु जुत्तं पाणहुम्मयणं ॥१९०॥

छाया :-

अथवा किं मम अनया प्रेक्ष्ये तावत् यद् पिता करोति ।
अदृष्ट-पाणिये न खलु युक्तं उपानहोन्मोचनम् ॥१९०॥

अर्थ :- अथवा पिता शुं करे छे ते जोउं ? आनावडे मारे शुं ? पाणीने जोया वगर पगमांथी जोडा काठी नांखवा ठीक नथी.

हिन्दी अनुवाद :- अथवा तो पिताजी क्या करते हैं वह देखूँ ? इनसे मुझे क्या ? पानी को देखे बिना ही पैर से जूते निकालना ठीक नहीं है।

गाहा :-

अह राया मह उवरिं दिणे दिणे पिययमाए भन्नंतो ।
जाओ सिढिल-सिणेहो कन्न-विसं जं महंत-विसं ॥१९१॥

छाया :-

अथ राजा मम उपरि दिने दिने प्रियतमया भणंतो ।
जातः शीथिल-स्नेहः कर्ण-विषं यत् महत् विषम् ॥१९१॥

अर्थ :- हवे राजा मारा उपर दिवसे दिवसे प्रियतमाना कहेवाथी शिथिल-स्नेहवाला थया छे कारण के कर्ण विष महा विष छे.

हिन्दी अनुवाद :- अब राजा प्रियतमा के कहने से दिन-प्रतिदिन अल्प-स्नेहवाले होते जा रहे हैं। कर्ण विष महा भयंकर विष है।

गाहा :-

सहसति अन्न-दियहे किंपि मिसं दाविऊण मह रन्ना ।
हरियं गाम-सहस्सं दिन्नं लहु-खेडयं एकं ॥१९२॥

छाया :-

सहसेति अन्य-दिवसे किमपि छलं दापयित्वा मह्यम् राज्ञा ।
हृतं ग्राम-सहस्रं दत्तं लघु-खेटकं एकम् ॥१९२॥

अर्थ :- सहसा एक दिवस राजा वडे कोइ पण बहानुं बताडीने हजार गाम लई लेवाया अने एक नानकडु गाम अपायु.

हिन्दी अनुवाद :- अचानक एक दिन राजा द्वारा कुछ भी बहाना निकाल कर हजार गाँव ले लिये गये और एक छोटा सा गाँव दिया गया।

गाहा :-

संजाय-अमरिसेणं ताहे मए चिंतियं दुरायारं ।
मारेऊणं एयं रज्जमहिदेमि, किं बहुणा ? ॥१९३॥

छाया :-

संजात-अमर्षेण ततः मया चिन्तितं दुराचारम् ।
मारयित्वा एतं राज्यं अधिपिष्ठासि किं बहुना ? ॥१९३॥

अर्थ :- उत्पन्न थयेला अमर्षा वाला मारावडे दुराचारी विचारायु के पिताने मारीने आ राज्यनो हुं अधिष्ठाता थउं, घणावडे शुं ?

हिन्दी अनुवाद :- संजात अमर्ष से मैंने दुराचार का चिन्तन किया। इस राज्य का मैं ही स्वामी बनूँ, बहुत गाँवों से क्या ?

गाहा :-

अहवा न पुव्व-पुरिसेहिं मज्झं वंसे कयं इमं पावं ।
तमहंपि कहं करोमी असार-रज्जरस कज्जेण ? ॥१९४॥

छाया :-

अथवा न पूर्व-पुरुषैः मम वंशे कृतं इदं पापम् ।
तमहमपि कथं करोमि असार-राज्यस्य कार्येण ॥१९४॥

अर्थ :- अथवा मारा वंशामां पूर्व-पुरुषो वडे आवु पाप करायु नथी तो असार राज्यना कार्य माटे हुं पण केम करू ?

हिन्दी अनुवाद :- अथवा मेरे वंश में पूर्व-पुरुषों ने ऐसा कोई पापाचरण नहीं किया है तो मैं भी ये असार-राज्य के लिए क्यों करूँ ?

गाहा :-

महिला-वयणेण इमो रागंधो कुणइ, कुणउ अन्नायं ।
मह पुण विवेय-जुत्तस्स हंदि ! न हु एरिसं जुत्तं ॥१९५॥

छाया :-

महिला-वचनेन अयं रागान्धः करोति, करोतु अन्यायम् ।
मम पुन विवेक-युक्तस्य हंदि ! न खलु ईदृशं युक्तम् ॥१९५॥

अर्थ :- महिलाना वचनवडे आ रागान्ध अन्याय करे छे, करवा दो, वली विवेकयुक्त एवा मने आवा प्रकारनुं करवा माटे योग्य नथी.

हिन्दी अनुवाद :- महिला के वचन द्वारा यह रागान्ध अन्याय करता है, उसे करने दो, किन्तु विवेकवान् मुझे ऐसा करना उचित नहीं है।

गाहा :-

ता किं करेमि इण्हं अवमाणं ताव दूसहं पिउणो ।
अण्व-वहोवि न जुत्तो देस - च्चाओ परं जुत्तो ॥१९६॥

छाया :-

तस्मात् किं करोमि इदानी अपमानं तावद् दुःसहं पितुः ।
आत्म-वधोऽपि न युक्तः देश-त्यागः परं युक्तः ॥१९६॥

अर्थ :- आ पिताजीना वडे अपमान दुःसह छे तो अत्यारे हुं शुं करू ? आत्म-वध पण योग्य नथी, देश त्याग परं योग्य छे.

हिन्दी अनुवाद :- पिताजी द्वारा किया गया यह अपमान दुःसह है, तो अभी क्या करूँ ? आत्म-वध भी योग्य नहीं है। देश त्याग ही परम मार्ग है।

गाहा :-

गंतूणमन्न देसं तम्हा सेवामि अन्न-नर-नाहं ।
हुं तंपि हु नहु जुत्तं अवमाण-पयं हि सेवति ॥१९७॥

छाया :-

गत्वान्य देशं तस्मात् सेवे अन्य-नरनाथं ।
हुं तमपि खलु न तु युक्तं, अपमान-पदं हि सेवा इति ॥१९७॥

अर्थ :- तेथी अन्यदेशामां जईने अन्य राजानी सेवा करू. बीजा राजानी सेवा करवी पण अपमान जनक लेखाथो ! तेथी ते पण युक्त नथी.

हिन्दी अनुवाद :- अतः अन्य देश में जाकर अन्य राजा की सेवा करूं ? अन्य की सेवा करना भी अपमानजनक ही है। अतः वह भी उचित नहीं है।

गाथा :-

सुग्रीव - नरिंद - सुओ जुयराया आसि एस रिद्धि-जुओ ।
संपइ पुण वंठो इव कह सेवं कुणइ भिच्चाण ? ॥१९८॥

छाया :-

सुग्रीव-नरेन्द्र-सुतः युवराजो आसीत् एषः ऋद्धि-युक्तः ।
सम्प्रति पुनः वण्ड इव कथं सेवां करोति भृत्यानाम् ॥१९८॥

अर्थ :- सुग्रीव राजानो आ युवराज पुत्र ऋद्धिवालो छे. तो वली हमणां वंठनी जेम नोकटोनी केम सेवा करे छे ? (आ प्रमाणे लोकोक्ति थथो !)

हिन्दी अनुवाद :- सुग्रीव राजा का यह युवराज पुत्र ऋद्धिवान् है, ऐसी लोकोक्ति है तो फिर अभी नपुंसक की तरह किसी राजा की क्यों सेवा करूं ?

गाथा :-

एमाइ-वयण-वित्थर-वज्जरण-समुज्जएण लोएण ।
दंसिज्जंतो रिऊणं कह गेहेसुं परिभमिस्सं ? ॥१९९॥

छाया :-

एवमादि-वचन-विस्तर कथयन् समुद्यतेन लोकेन ।
दश्यमानः रिपूनां कथं गृहेषु परिभ्रमिष्यामि ? ॥१९९॥

अर्थ :- इत्यादि वचन-विस्तारने बोलवामां उद्यत थयेला लोकवडे बताडाता शत्रुना घरमां था माटे भमुं ?

हिन्दी अनुवाद :- इत्यादि वचन के विस्तार को बोलते उद्यमित लोक द्वारा बताये हुये शत्रु के घर में मैं भ्रमण क्यों करूं ?

गाथा :-

तम्हा कइवय-निय-पुरिस-परिगओ अकय-अन्न-जण-सेवो ।
गंतु चिट्ठामि अहं कम्मवि पच्चंत-देसम्मि ॥२००॥

छाया :-

तस्मात् कतिपय-निज-पुरुष-परिगतः अकृत-अन्य जनसेवा ।
गत्वा तिष्ठामि अहं कस्मिन्नपि प्रत्यन्त-देशे ॥२००॥

अर्थ :- तेथी केटलाक पोताना पुरुषथी परीवरेलो नही करेली अन्य जननी सेवावालो हुं कोईपण एकान्त प्रदेशामां जईने रहूं.

हिन्दी अनुवाद :- अतः अब मैं चुनंदे पुरुष से आवृत अन्य जन की सेवा नहीं करने वाला मैं एकान्त प्रदेश में ठहरूं।

गाहा :-

जा जीवइ एस पिया एयम्मि मयम्मि पुण जहा-जुत्तं ।
तइय च्चिय काहामो किं इण्हं तीए चिंताए ? ॥२०१॥

छाया :-

यावत् जीवति एषः पिता एतस्मिन् मृते पुनः यथा-युक्तम् ।
तदा एव कथयिष्यामि किं इदानीं तथा चिन्तया ? ॥२०१॥

अर्थ :- ज्यांचुधी आ पिता जीवे छे त्यां चुधी एकान्त स्थानमां रहुं ! पिता मृत्यु
पामे छते जे करवा योग्य हथो ते करीश, अत्यारे ते चिन्तावडे शुं ?

हिन्दी अनुवाद :- जब तक पिताजी जीवित हैं तब तक एकान्त स्थान में ही रहूं। पिताजी की
मृत्यु के बाद जो करना है सो करूंगा, अभी से चिन्ता क्या करना ?

सुप्रतिष्ठ द्वारा गृहत्याग-सिंहगुफा मां आगमन

गाहा :-

एवं विणिच्छिय-मई कइवय- पिय - परियणेण परियरिओ ।
सामंत - मंति पुर - नायगेहिं रत्ता य अत्ताओ ॥२०२॥

छाया :-

एवं विनिश्चित-मतिः कतिपय-पितृ-परिजनेन परिवृतः ।
सामन्त-मन्त्री-पुर-नायकैः राज्ञा च अज्ञातः ॥२०२॥

अर्थ :- आ प्रमाणे निश्चित करेली मतिवालो पिताना केटलाक परिजन वडे
परिवरेलो सामन्त-मन्त्री-पुरनायक अने राजा वडे अज्ञात.....

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार निश्चित मतिवाला मैं कितने ही परिजनों से आवृत, सामन्त-मन्त्री
और राजा से अज्ञात-

गाहा :-

नीहरिओ तत्तो हं कमेण अह पाविउं इमं पल्लिं ।
सीहगुहं नामेण अच्छिउमेईए पारद्धं ॥२०३॥

छाया :-

निःसृतः ततोऽहं क्रमेण अथ प्राप्य इमां पल्लिं ।
सिंहगुफां नाम्ना आसितुमेतस्यां प्रारब्धम् ॥२०३॥

अर्थ :- त्यांथी हुं नीकल्यो अने नामवडे आ सिंहगुफा पल्लिमां आव्यो अने
अहीं रहेवामाटे प्रारंभ करावु.

हिन्दी अनुवाद :- वहाँ से निकला हुआ मैं सिंह गुफा की पल्लि में आया और यहाँ रहने लगा।
संग तेवो रंग

गाहा :-

मिलिया मज्झ अणेगे भिल्ला चोरा कुकम्म-निरया य ।
तेहिं परिवारिओ हं संपइ पल्ली-वई जाओ ॥२०४॥

छाया :-

मिलिता मह्यम् अनेके भिल्लाः चोराः कुकर्म निरताश्च ।

तैः परिवृतोऽहं सम्प्रति पल्ली-पतिः जातः ॥२०४॥

अर्थ :- मने चोरो अने कुकर्ममां लागेला अनेक भिल्लो मण्या. तेओ वडे परिवरेलो हुं हमणां पल्लिपति थयो छुं.

हिन्दी अनुवाद :- यहाँ पर मुझे अनेक भिल्ल, चोर और कुकर्मासक्त लोग मिले और उन लोगों से परिवृत मैं अब पल्लिपति हूँ।

गाहा :-

तं जं तुमए पुटुं तुम्हाणं कह णु एत्थ आवासो ।

उत्तम-नराण पाविट्ट-लोय-जोगाए पल्लीए ? ॥२०५॥

छाया :-

तद् यद् त्वया पृष्टं युष्माकं कथं नु अत्र आवासः ।

उत्तम-नराणां पापिष्ठ-लोक-योग्यायां पल्लयाम् ? ॥२०५॥

अर्थ :- पापिष्ठ लोकने योग्य पल्लिमां तमारा जेवा उत्तम मनुष्योन्नो आवास क्यांथी ए तारा. वडे जे पूछायु ते -

गाहा :-

एयं संखेवेणं कहियमवत्थाण-कारणं एत्थ ।

तं तुह धनदेव ! मए गरुय सिणेहेण सव्वंपि ॥२०६॥

छाया :-

एतं संक्षेपेण कथितमस्थान-कारणं अत्र ।

तं तव धनदेव ! मया गुरु-स्नेहेन सर्वमपि ॥२०६॥ - युग्मम्

अर्थ :- आ अही अवस्थाननु कारण हे धनदेव ! अतिरुनेहवाला मारा वडे सर्व पण तने ते संक्षेपथी कहेवायु !

हिन्दी अनुवाद :- पापी लोगों के पल्लि में आप जैसे उत्तम मनुष्य का वास कहाँ से यह तेरे द्वारा जो पूछा गया उसका यह कारण है और हे धनदेव ! अति स्नेहान्वित मेरे से तेरे सामने संक्षेप में सब कुछ कहा गया है।

गाहा :-

भणियं धनदेवेणं अव्वो ! जणओवि एरिसं कुणइ ।

अवमाणं पुत्ताणं धी ! धी ! संसार-वासस्स ॥२०७॥

छाया :-

भणितं धनदेवेन अव्वो ! जनकोऽपि ईदृशं करोति ।

अपमानं पुत्राणां धीक् ! धीक् ! संसार-वासस्य ॥२०७॥

अर्थ :- धनदेव वडे कहेवायु, “अरे ! पिता पण आवु पुत्रोनुं अपमान करे छे ! संसार वासने निश्चे धिक्कार हो ! धिक्कार हो !

हिन्दी अनुवाद :- धनदेव ने कहा कि अरे ! पिता भी पुत्र का इस प्रकार अपमान करते हैं ? निश्चित ही संसार वास को धिक्कार हो ! धिक्कार हो !

गाहा :-

सो च्चिय कज्ज-वसेणं वल्लहओ होइ एत्थ संसारे ।
कारण वसेण सोवि हु रिउच्च वेसो जणो होइ ॥२०८॥

छाया :-

स एव कार्य-वशेन वल्लभो भवति अत्र संसारे ।
कारण-वशेन सोऽपि रिपुः इव द्वेष्यः जनो भवति ॥२०८॥

अर्थ :- ते ज कार्य वश्याथी आ संसारमा प्रिय बने छे अने कारण वश्याथी ते पण शत्रुनी जेम द्वेष्य जन बने छे.

हिन्दी अनुवाद :- संसार में कार्य की परवशता से जो प्रिय बनता है, वही किसी कारण से शत्रु की तरह द्वेष्य भी बनता है।

गाहा :-

परमत्थओ न कोवि हु पिओ व सत्तू व अत्थि लोगम्मि ।
नइ माया नेय पिया स - कज्ज - वसओ जणो सब्बो ॥२०९॥

छाया :-

परमार्थतो न कोऽपि हि प्रियो वा शत्रुः वा अस्ति लोके ।
न माता न पिता स्व - कार्य - वशतो जनः सर्वः ॥२०९॥

अर्थ :- आ लोकमां परमार्थथी कोइ पण प्रिय नथी अथवा कोई शत्रु नथी. माता नथी, पिता नथी, परंतु सर्वजन पोताना कार्य ना वश्याथी प्रिय अप्रिय बने छे.

हिन्दी अनुवाद :- इस लोक में परमार्थ से कोई प्रिय नहीं है और कोई शत्रु भी नहीं है, माता नहीं है, पिता भी नहीं है, किन्तु सर्वजन स्वयं के कार्य से प्रिय-अप्रिय बनते हैं।

गाहा :-

पुत्तोवि सत्तु सरिसो दीसइ निय-कारणे अपुज्जंते ।
पिउणा सुविणीओवि हु धिरत्थु संसार-वासस्स ॥२१०॥

छाया :-

पुत्रोऽपि शत्रुः सदृशः दृश्यते निज-कारणे अपूर्यमाणे ।
पित्रा सुविनीतोऽपि खलु धिग् अस्तु संसार-वासस्य ॥२१०॥

अर्थ :- पोतानुं कार्य पूर्ण नहीं थतां पितावडे सुविनीत पुत्र पण शत्रु जेवो देखाय छे, संसार वासने खरेखर धिक्कार हो धिक्कार हो.

हिन्दी अनुवाद :- कार्य पूर्ण न होने पर सुविनीत पुत्र भी पिता का शत्रु बनता है। निश्चित ही संसारवास को धिक्कार हो ! धिक्कार हो !

गाहा :-

तं चिय कुमर ! महप्पा तं चिय पसमस्स लद्ध-परमत्थो ।
तं चिय विवेय - जुत्तो तुमए च्चिय मंडिया वसुहा ॥२११॥

છાયા :-

ત્વં એવ કુમાર ! મહાત્મા ત્વમેવ પ્રશમસ્ય લબ્ધ-પરમાર્થઃ ।

ત્વં એવ વિવેક-યુક્તઃ ત્વયા એવ મંડિતા વસુધા ॥૨૧૧॥

અર્થ :- હે કુમાર ! તું જ મહાત્મા છે ! તું જ પ્રશમના મેલવેલા પરમાર્થવાળો છે, તું જ વિવેક-યુક્ત છે. તારા વડે જ આ પૃથ્વી શોભે છે.

હિન્દી અનુવાદ :- હે કુમાર ! તું હી મહાત્મન્ હૈ ! તું હી પ્રશમ સે પ્રાપ્ત કિયે હુયે પરમાર્થવાલા હૈ, તું હી વિવેકયુક્ત હૈ, તેરે સે હી યહ પૃથ્વી શોભિત હૈ ।

ગાહા :-

પિતૃણાઽવમાણિઓવિ હુ અન્નં અસમંજસં અકાઞ્ચનં ।

સંતમ્મિ બલે તહવિ હુ દેસ-ચ્ચાઓ કઓ જેણ ॥૨૧૨॥

છાયા :-

પિત્રા અપમાનિતોઽપિ ખલુ અન્યત્ અસમંજસમ કૃત્વા ।

સતિ બલે તથાઽપિ ખલુ દેશ-ત્યાગઃ કૃતો યેન ॥૨૧૨॥

અર્થ :- પિતાવડે અપમાનિત થયેલો પણ તેવા પ્રકારનું બલ હોતે છતે પણ બીજુ કાંઈ જ અસમંજસ કર્યા વગર જેના વડે સ્વરેસ્વર દેશત્યાગ કરાવ્યો."

હિન્દી અનુવાદ :- પિતા દ્વારા અપમાનિત ઔર શક્તિ હોને પર ખી ઔર કુછ અપ્રિય ન કરતે હુયે આપ દ્વારા દેશ ત્યાગ કિયા ગયા-

ગાહા :-

એમાઙ્-વયણ-વિત્થર-અવરોપ્પર-વડ્ઢમાણ-નેહાણં ।

તાણં પંચ વ સત્ત વ વોલીણા વાસરા જાવ ॥૨૧૩॥

છાયા :-

એવાદિ વચન વિસ્તર પરસ્પર-વર્દ્ધમાન સ્નેહાનામ્ ।

તેષાં પંચ વા સપ્ત વા અતિક્રાન્તા વાસરા યાવત્ ॥૨૧૩॥

અર્થ :- ઇત્યાદિ વચનનાં વિસ્તારવડે પરસ્પર-વધતા સ્નેહવાલા તેઓનાં જ્યાં સુધી માં પાંચ સાત દિવસ પસાર થયા.

હિન્દી અનુવાદ :- ઇત્યાદિ વચન સે પરસ્પર બઢતે-સ્નેહવાલે ઁનકે પાંચ-સાત દિન બીત ગયે।
ધનદેવની પ્રસ્થાન ભાવના

ગાહા :-

તાવય સમત્થ-સત્થં દદ્દુણં ગમણ-ઉચ્છુગીભૂયં ।

ધણદેવો આપુચ્છઙ્ગ ગમણત્થં સુપ્પઙ્ગુદ્દં તં ॥૨૧૪॥

છાયા :-

તાવત્ સમસ્ત-સાર્થં દૃષ્ટ્વા ગમનોત્સુકીભૂતમ્ ।

ધનદેવ આપૃચ્છતિ ગમનાર્થં સુપ્રતિષ્ઠં તં ॥૨૧૪॥

અર્થ :- ત્યાંસુધીમાં જવા માટે ઉત્સુક થયેલા સમસ્ત સાર્થ ને જોઈને તે સુપ્રતિષ્ઠને જવા માટે ધનદેવ પૂછે છે.

हिन्दी अनुवाद :- उतनी देर में समस्त सार्थ को जाने के लिए उत्सुक देखकर धनदेव सुप्रतिष्ठ पल्लीपति से आज्ञा लेता है।

गाथा :-

तुम्ह विओगो दूसहो एसो सत्थो समुच्छुगीभूओ ।
तं कुमार ! अम्ह जायं एत्थ तडी एत्थ वग्घोत्ति ॥२१५॥
एएणं चिय नेच्छंति साहवो सज्जणेहिं संसगिं ।
जम्हा विओग-विहुरिय-हिययस्स न ओसहं अन्नं ॥२१६॥

छाया :-

तव वियोगः दुःसहः एषः सार्थः समुत्सुकीभूतः ।
त्वं कुमार ! अस्माकं जातं अत्र तटी अत्र व्याघ्र इति ॥२१५॥
एतेन एव नेच्छन्ति साधवः सज्जनैः संसर्गम् ।
यस्मात् वियोग विधुरित-हृदयस्य न औषधं अन्यत् ॥२१६॥

अर्थ :- “एक बाजु तारो वियोग दुःसह छे. बीजी बाजु आ सार्थ जवा माटे उत्सुक थयो छे. हे कुमार ! तूं अमारो थयो छे. ‘अहीं तट अने आ बाजु वाघ’ आथी ज साधुओ सज्जनोनी साथे संसर्गने ईच्छता नथी, जे कारणथी वियोग थी विधुरित हृदय नु बीजुं कोई ज औषध नथी.

हिन्दी अनुवाद :- एक तरफ तेरा वियोग दुःसह है और दूसरी तरफ यह सार्थ जाने के लिए उत्सुक है और हे कुमार ! तूं भी हमारा हो गया है, ‘इधर तट और दूसरी ओर शेर (बाघ)’ इसीलिए संत पुरुष सज्जनों के साथ संसर्ग की इच्छा नहीं करते हैं, अतः वियोग से विधुरित सहृदयियों को और कोई औषधि नहीं है।

गाथा :-

जइवि हु वहइ न जीहा एरिस-वयणे समुल्लविज्जंते ।
तहवि हु भणामि मुंचसु गच्छामो संपयं अम्हे ॥२१७॥

छाया :-

यद्यपि खलु विंध्यति न जीह्वा ईदृश-वचने समुल्लप्यते ।
तथापि खलु भणामि मुञ्चस्व गमिष्यामः साम्प्रतं वयम् ॥२१७॥

अर्थ :- आवा प्रकारना वचन बोले छते पण जीभ वींघाति नथी तो पण कहुं छुं मने छोडो हवे अमे जइथु.

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार वचन बोलने पर भी जिह्वा रुकती नहीं है, फिर भी कहता हूँ मुझे छोड़ो अब हम जायेंगे।

गाथा :-

ता किंपि चिंतित्ठणं खणंतरं दीहरं च नीससिउं ।
वज्जरइ सुणइट्ठो सविसायं एरिसं वयणं ॥२१८॥

छाया :-

ततः किमपि चिन्तयित्वा क्षणांतरं दीर्घं च निःश्वस्य ।

कथयति सुप्रतिष्ठः सविषादं ईदृशं वचनम् ॥२१८॥

अर्थ :- तयारपछी कांइपण विचारिने क्षणपछी लांबो श्वास लईने विषादपूर्वक आवा प्रकारना वचन 'सुप्रतिष्ठ' बोले छे.

हिन्दी अनुवाद :- तत्पश्चात् कुछ सोचकर एक क्षण बाद लंबा श्वास लेकर सुप्रतिष्ठ विषाद युक्त इस प्रकार बोलता है।

गाहा :-

अम्हारिसेहिं गिहमागयाण तुम्हारिसाणं सुयणाणं ।

को उवयारो कीरउ एरिस-ठाणे वसंतेहिं ? ॥२१९॥

छाया :-

अस्मादृशैः गृहमागतानां युष्मादृशानां सुजनानाम् ।

कः उपकारः क्रियताम् ईदृश-स्थाने वसद्भिः ? ॥२१९॥

अर्थ :- "आवा स्थानमां रठेता अमाटा जेवा वड़े घरे आवेला तमाटा जेवा सज्जनोको कयो उपकार कराय ?"

हिन्दी अनुवाद :- "ऐसे स्थान में रहते हुए मेरे से गृहांगण में आये हुये आप जैसे सज्जनों का क्या उपकार किया जाये ?"

गाहा :-

तहवि ह भणामि किंचिवि कायव्वो नेव पत्थणा-भंगो ।

जेण पर - कज्ज - साहण्य - निरया खलु सज्जणा होंति ॥२२०॥

छाया :-

तथापि खलु भणामि किञ्चिदपि कर्तव्यः नैव प्रार्थना-भङ्गः ।

येन पर - कार्य - साधन - निरता खलु सज्जनाः भवन्ति ॥२२०॥

अर्थ :- तो पण हुं कांईक कहुं छु. ते मारी प्रार्थनानो भंग न ज करवो जोइए. जे कारणथी खरेखर सज्जनो पर-कार्य ने साधवामां निरत होय छे."

हिन्दी अनुवाद :- फिर भी मैं कुछ कहता हूँ सो आपको मेरी इस प्रार्थना को भंग नहीं करना चाहिए, जिस कारण से निश्चय ही सज्जन परोपकार में निरत रहते हैं।"

सुप्रतिष्ठ द्वारा धनदेवने दिव्यमणि भेंट

गाहा :-

तत्तो फुरंत-निम्मल-मऊह-विच्छुरिय-दस-दिसा-ऽऽभोगो ।

एक्कोवि अणेग - गुणो पवर - मणी तस्स उवणीओ ॥२२१॥

छाया :-

ततः स्फुरंत-निर्मल-मयूख-विच्छुरित-दश-दिशा-आभोगः ।

एकोऽपि अनेक-गुणः प्रवर-मणिः तस्मै उपनीतः ॥२२१॥

अर्थ :- तयार पछी देदीप्यमान निर्मल किरणोथी झांखी करी हे दशो दिशाना विस्तारने एवो एक पण अनेक गुणवालो श्रेष्ठ मणि तेनी पासे मूकयो.

हिन्दी अनुवाद :- फिर देदीप्यमान निर्मल किरणों से दशों दिशाओं को प्रकाशित करनेवाला अनेक गुणवाला मणि धनदेव के पास लाया।

गाथा :-

ददतुं दिव्य - मणिं तं दीसंताणेय - लक्खणं विमलं ।
वियसिय - लोयण - जुअलो अह धणदेवो इमं भणइ ॥२२२॥

छाया :-

दृष्ट्वा दिव्य-मणिं तं दर्शयन्ननेक-लक्षणं विमलं ।
विकसित लोचन-युगलः अथ धनदेव इमं भणति ॥२२२॥

अर्थ :- अनेक लक्षणवालो, विमल, दिव्य मणिने जोता विकसित लोचन युगल वालो धनदेव हवे अने कहे छे।

हिन्दी अनुवाद :- अनेक लक्षणयुक्त विमल, दिव्यमणि को देखते ही विकसित लोचन युगलवाला धनदेव उसे (सुप्रतिष्ठ से) कहता है।

गाथा :-

एरिस - पवर - मणीणं मणुस्स - खेत्तम्मि संभवो नत्थि ।
नवरं जइ सुर - लोगे हवेज्ज न हु अन्न-खेत्तम्मि ॥२२३॥

छाया :-

ईदृश-प्रवर-मणीनां मनुष्य-क्षेत्रे संभवो नास्ति ।
नवरं यदि सुर-लोके भवेत् न खलु अन्य-क्षेत्रे ॥२२३॥

अर्थ :- आवा प्रकारना श्रेष्ठ मणिनो संभव मनुष्य क्षेत्रमां नथी जो के आ देवलोक सिवाय अन्य क्षेत्रमां न होय।

हिन्दी अनुवाद :- ऐसे श्रेष्ठ मणि का मनुष्य क्षेत्र में होना संभव नहीं है, क्योंकि यह देवलोक के अलावा अन्य क्षेत्रों में नहीं रहता है।

गाथा :-

एवं विणिच्छियम्मिवि तहवि हु कोऊहलं महं हियए ।
तो भणसु कह णु जाया संपत्ती तुम्ह एयस्स? ॥२२४॥

छाया :-

एवं विनिश्चितेपितथापि खलु कुतूहलं मम हृदये ।
ततः भण कथं नु जाता सम्प्राप्ति तव एतस्य ? ॥२२४॥

अर्थ :- आ प्रमाणे निश्चय करे छते पण मारा हृदयमां निश्चे कुतूहल थयु छे। तेथी कहे आ मणिनी उत्पत्ति केवी रीते थई छे ?

हिन्दी अनुवाद :- इस प्रकार का निश्चय होने पर भी मेरे हृदय में निश्चित कुतूहल होता है, इसीलिए कहो कि इस मणि की उत्पत्ति कैसे हुई ?

गाथा :-

तो भणइ सुणइट्ठो सम्मं हि विणिच्छियं तुमे भइ ! ।
माणुस - खेत्त - समुत्थो न होइ एसो मणी ताव ॥२२५॥

છાયા :-

તતો ભળતિ સુપ્રતિષ્ઠઃ સમ્યક્ હિ વિનિશ્ચિતં ત્વયા ભદ્ર ! ।

માનુષ્ય - ક્ષેત્ર - સમુત્થઃ ન ભવતિ ઇષઃ મળી તાવત્ ॥૨૨૫॥

અર્થ :- ત્યાર પછી સુપ્રતિષ્ઠ કહે છે - હે ભદ્ર ! તારા વડે સાચો નિશ્ચય કરાયો છે. આ મળિ મનુષ્ય ક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલો નથી.

હિન્દી અનુવાદ :- તત્પશ્ચાત્ સુપ્રતિષ્ઠ કહતા હૈ - હે ભદ્ર ! તેરે દ્વારા યથાતથ્ય કહા ગયા હૈ। યહ મળિ મનુષ્ય ક્ષેત્ર મૈં ઉત્પન્ન નહીં હુઆ હૈ।

ગાહા :-

કિંતુ સુર - લોગ - જાઓ એસો સંપાવિઓ જં હમ્હેહિં ।

તં એગ - મળો હોડં જડ કોડગમત્થિ તો સુણસુ ॥૨૨૬॥

છાયા :-

કિન્તુ સુર-લોક-જાતઃ ઇષઃ સંપ્રાપ્તઃ યદસ્માભિઃ ।

તદ્ એક-મનઃ ભૂત્વા યદિ કૌતૂકમસ્તિ તદા શ્રુણુ ॥૨૨૬॥

અર્થ :- પરંતુ અમારાવડે આ દેવલોક થી પ્રાપ્ત કરાયેલો છે જો તને. તે કૌતુક છે તો એક ચિત્તવાલો થઈને સાંભલ.....

હિન્દી અનુવાદ :- કિન્તુ હમારે દ્વારા પ્રાપ્ત કિયા હુઆ યહ મળિ દેવલોક કા હૈ વહ તુજે કૌતુક હૈ, તો તૂ એક ચિત્તવાલા હોકર સુન।

સુપ્રતિષ્ઠ દ્વારા દિવ્યમળિ વૃત્તાંત કથન

ગાહા :-

પુવ્વં એગમ્મિ દિને પમાય - સમયમ્મિ ગહિય - કોદંડો ।

ચલિઓ કડ્ડવય - નિય - પુરિસ - પરિગઓ મિગ - વહટ્ટાએ ॥૨૨૭॥

છાયા :-

પૂર્વે એકસ્મિન્ દિને પ્રભાત - સમયે ગૃહીત-કોદણ્ડઃ ।

ચલિતઃ કતિપય-નિજ-પુરુષ-પરિગતઃ મૃગ-વધાર્થમ્ ॥૨૨૭॥

અર્થ :- પહેલા એક દિવસ સવારના સમયે ગ્રહણ કરેલા ધનુષ્યવાલો કેટલાક પોતાના પુરુષોથી પરિવરેલો મૃગના વધમાટે ગયો.

હિન્દી અનુવાદ :- પહેલે એક દિન પ્રાતઃ કાલ ધનુષ લેકર મૈં અપને કુછ પુરુષોં કે સાથ મૃગયા કે લિએ ગયા।

ગાહા :-

ઉત્તર-દિસા મુહો હં ગાડયમેત્તમ્મિ ભૂમિ-ભાગમ્મિ ।

ઘણ-પત્તલ - તરુ - વર - સંકુલમ્મિ વિચરામિ જાવ વણે ॥૨૨૮॥

છાયા :-

ઉત્તર - દિગ્ - મુખોડહં ગવ્યૂતમાત્રે ભૂમિ-ભાગે ।

ઘન-પત્ર-તરુવર-સડ્કુલે વિચરામિ યાવત્ વને ॥૨૨૮॥

અર્થ :- ઉત્તર દિશા સન્મુખ હું ગાઢ પત્ર-વૃક્ષથી વ્યાપ્ત વનમાં ગાઠ માત્ર ભૂમિભાગ માં હું ફરતો હતો.

हिन्दी अनुवाद :- उत्तर दिशा सन्मुख गाढ़ पत्र-वृक्ष से व्याप्त वन में एक गाऊ मात्र भूमि भाग में मैं घूमता था।

गाहा :-

ताव य निसुओ सहो दूसह - गुरु - दुक्ख - सूयओ कलुणो ।
आगासे महिलाए सघघरं रोयमाणीए ॥२२९॥

छाया :-

तावच्च निश्रुतः शब्दः दुःस्सह-गुरु-दुक्ख सूचकः करुणः ।
आकाशे महिलया सगदगदं रुदन्त्या ॥२२९॥

अर्थ :- तेटली वारमां दुःसह, अत्यंत दुःख सूचक करुण शब्द आकाशमां गदगद स्वरें रडती महिलानो सांभळ्यो.

हिन्दी अनुवाद :- उतनी ही देर में दुःसह, अत्यंत दुःखसूचक आवाज आकाश में गदगद रोती महिला का स्वर सुनाई दिया।

गाहा :-

हा ! कह मज्झ निमित्ते पिययम ! अतिगुरुय-आवयं पत्तो ? ।
हा ! अज्जउत्त ! इण्हं तुह विरहे नत्थि मह जीयं ॥२३०॥

छाया :-

हा ! कथं मम निमित्ते प्रियतम ! अतिगुरुक-आपदं प्राप्तः ? ।
हा ! आर्यपुत्र ! इदानीं तव विरहे नास्ति मम जीवितम् ॥२३०॥

अर्थ :- “हा ! प्रियतम ! मारा कारणे तमे शा माटे मोटी आपत्ति वेठी ? हा ! आर्यपुत्र ! अत्यारे तारा विरहमां मारु जीवन नथी.”

हिन्दी अनुवाद :- “हा ! प्रियतम ! मेरे लिए तुमने क्यों बड़ी विपत्ति ली। हा ! आर्यपुत्र ! अब आपके विरह में मेरा जीवन नहीं है।”

गाहा :-

तदणंतरं च केणवि हक्किय अइनिदुठुरं समुल्लवियं ।
कत्तो मह वसगाए साहारो तुज्झ एएण ? ॥२३१॥

छाया :-

तदनंतरं च केनापि आकार्य अतिनिष्ठुरं समुल्लपितं ।
कुतः मह्यम् वश्यायाः साधारः तव अनेन ? ॥२३१॥

अर्थ :- तयार पछी कोईना वड़े अति निष्ठुर पणे कहेवायु, इवे जो तुं माटे वशा छे तो तने एनो एं आधार ?

हिन्दी अनुवाद :- उसके बाद किसी के द्वारा निष्ठुरता से कहा गया, अब, यदि तुम मेरे वश हो तो तुम्हें उसका क्या आधार ?

गाहा :-

तं सोऊणं मज्झं मणम्मि कोऊहलं समुप्पन्नं ।
जाव य दोण्णि व तिण्णि व वच्चांमि पयाइं ता निसुओ ॥२३२॥

एगम्मि वण - निगुंजे अदिस्समाणस्स कस्सवि वरस्स ।
गरु - दुक्ख - सूयण - परो मंदो नित्थणण-संसद्दो ॥२३३॥

छाया :-

तत् श्रुत्वा मम मनसि कुतूहलं समुत्पन्नं ।
यावच्च द्विः वा त्रिः वा व्रजामि पदाति तावत् निश्रुतः ॥२३२॥
एकस्मिन् वन-निकुंजे अदृश्यमानस्य कस्यापि नरस्य ।
गुरु - दुक्ख - सूचन - पर - मन्दः निस्तनन-संशब्दः ॥२३३॥

अर्थ :- ते सांभलीने मारा मनमां कुतूहल उत्पन्न थयु. अने ज्यां सुधी बे अथवा
त्रण पगला गयो तेटलीवारमां एक वन-निकुंजमां अदृश्यमान कोईक पुरुषणां
अत्यंत दुःखने सूचित करतो अतिमन्द अवाजवालो शब्द मारा वडे संभलायो.
हिन्दी अनुवाद :- यह सुनकर मेरे मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ और जहां तक दो या तीन पग
गया उतनी ही देर में एक वन-निकुंज में अदृश्यमान अत्यंत दुःख को सूचित करता अति मन्द
आवाज करता किसी पुरुष का शब्द मेरे कान में सुनाई दिया।

गाहा :-

तत्तो महंत - कोऊहलेण तत्तो - मुहो अहं चलिओ ।
पेच्छामि संबलि - तरं सरलं उत्तुंगमइगरुयं ॥२३४॥

छाया :-

ततो महत् - कुतूहलेन तन्मुखोऽहं चलितः ।
पश्यामि शाल्मलि - तरुं सरलं उत्तुंगमतिगुरुकम् ॥२३४॥

अर्थ :- त्त्यार पछी मोटा कुतूहलवडे ते तरफ हुं गयो, अने सरल, उंचुः, अतिविशाल
शाल्मली वृक्ष ने में जोयु.

हिन्दी अनुवाद :- फिर बड़े कुतूहल से मैं उस ओर गया और ऊंचा तथा अति विशाल
शालमली वृक्ष को मैंने देखा।

गाहा :-

दंसणमेत्तुप्पाइय - अइगरुय - भएहिं रत्त-नेत्तेहिं ।
कसिण-सरीर - समुब्भूय - भूरि - पहा - भरिय - गयणेहिं ॥२३५॥
निम्मल-मणि-वल्लय-समुच्छलंत - कंतीए पयड - वयणेहिं ।
गुरु-रोस-वस-वियंभिय - फार - फणा - घोर - भुयणेहिं ॥२३६॥
दीहर-ललंत - जीहा - सहस्स - विप्फुरण-भीइ - जणणेहिं ।
असरिस - अमरिस - वस - विप्पमुक्क - फुंकार - सद्देहिं ॥२३७॥
अइगरुय - पन्नगेहिं समंतओ वेढिओ अणेगेहिं ।
एगो दिव्वागारो पुरिसो दिट्ठो अहे तस्स ॥२३८॥

छाया :-

दर्शनमात्रोत्पादित अतिगुरुक - भयैः रक्त-नेत्रैः ।
कृष्ण - शरीर - समुद्भूत - भूरि - प्रभा - भरित - गगनैः ॥२३५॥

निर्मल-मणि-वलय-समुल्लसत् कान्त्या प्रकट - वदनैः ।
 गुरु-रोष-वश-विजृम्भित-स्फार-फणा - घोर - भुजगैः ॥२३६॥
 दीर्घ ललत् जीह्वा-सहस्र - विस्फुरण - भीति - जनकैः ।
 असदृश-अमर्ष - वश - विप्रमुक्त - फुङ्कार - शब्दैः ॥२३७॥
 अतिगुरुक - पद्मगैः समन्ततः वेष्टितो अनेकैः ।
 एको दिव्याकारः पुरुषः दृष्टः अधस्तस्या ॥२३८॥

अर्थ :- जोवामात्रथी भय पमाडनार, लाल आँखवाला, काला शरीरथी निकलती अत्यंतकांतिथी आकाश भरनार, निर्मल मणि समूहनी उज्ज्वल कांतिवड़े चमकता मुखवाला, अतिरोषथी फणाने वारंवार उंची करता, लांबी चंचल हजारो जिह्वाथी भीतिने पेदा करता, भयंकर क्रोधने वशथी वारंवार फुंफाडा मारता अति मोटा सर्पोंवड़े चारे बाजुथी विंटायेल ते वृक्षनी नीचे एक दिव्याकारवाला पुरुषने मे जोयो।

हिन्दी अनुवाद :- दृष्टिपात से ही भयंकर, रक्तवर्णीय नेत्रोंवाला, कृष्ण शरीर से निकलती हुई कान्ति से आकाश व्याप्त करनेवाले, निर्मल मणि समूह की उज्ज्वल कांति से चमकीले मुखवाले, अतिरोष से फण को बार-बार ऊपर करनेवाले, चंचल सहस्र जिह्वा से भय प्रदान करनेवाले, भयंकर क्रोध से बार-बार फुफ्कार करते अति बड़े सर्पों से चारों ओर वेष्टित उस वृक्ष के नीचे एक दिव्याकारवाले पुरुष को मैंने देखा।

गाहा :-

अइदूसह-वियणा - वस - विमुक्क - पुणरुत्तं - मंद-हुंकारं ।
 आकंठ - वेष्टियं तं ददुं पुरिस मए भणियं ॥२३९॥

छाया :-

अतिदुःसह वेदना-वश-विमुक्त-पुनरुत्तं मन्द-हुंकारम् ।
 आकण्ठ - वेष्टितं तं दृष्ट्वा पुरुषं मया भणितम् ॥२३९॥

अर्थ :- आकंठ विंटायायेल ते पुरुषने जोईने मारावड़े कहेवायु, अने तेना वड़े अतिदुःसह वेदनाना वशथी वली मन्द हुंकार करायो।

हिन्दी अनुवाद :- आकंठ वेष्टित उस पुरुष को देखकर मैंने उनसे कहा और उसने दुःसह वेदना के वश से अति मंद हुंकार किया।

गाहा :-

धी ! धी ! ह्य विहिणो विलसियस्स असमिक्खियस्स एयस्स ।
 एयारिसेवि पुरिसे एरिस - दुक्खं करेतस्स ॥२४०॥

छाया :-

धिक् ! धिक् ! हत विधिना विलसितस्य असमीक्षितस्य एतस्य ।
 एतादृशोऽपि पुरुषे ईदृश - दुःखं कुर्वतः ॥२४०॥

अर्थ :- “धिव्कार हो ! धिव्कार हो ! आवा प्रकारना पण पुरुषने विषे विचार्या वगर आवा प्रकारनुं दुःख करनार आ विलासने धिव्कार हो ! एवी आ विधिवड़े सय्यु”

हिन्दी अनुवाद :- “इस प्रकार के पुरुष को ऐसे दुःख देनेवाले इस शोचनीय (बिना चिन्तित) विलास को धिक्कार हो (भाग्य से घायल हुए) धिक्कार हो, धिक्कार हो।”

गाथा :-

एमाइ मए परिदेवियम्मि भणियं इमं तओ तेणं ।
अलमिमिणा ते परिदेविएण सुण ताव मह वयणं ॥२४१॥

छाया :-

एवमादिः मया परिदेविते भणितं इदं ततस्तेन ।
अलममुना तव परिदेवितेन श्रुणु तावत् मम वचनम् ॥२४१॥

अर्थ :- इत्यादि मारता वड़े विलाप कराये छते तेनावड़े आ प्रमाणे कहेवायु, “अत्यारे तारे आ विलापवड़े सत्यु. त्यां सुधी मारु वचन सांभल.”

हिन्दी अनुवाद :- इत्यादि मेरे द्वारा विलाप करने पर भी उसने कहा, “अभी तुझे यह विलाप करना उचित नहीं है, तू मेरा वचन सुन।”

गाथा :-

चिट्ठइ चूडाए महं मज्झे बद्धो फुरंत - किरणिल्लो ।
दिव्वो मणीण पवरो मणी भुयंगोह - विह्वणो ॥२४२॥

छाया :-

चिष्ठति चूडायां मम मध्ये बद्ध स्फुरत्-किरणशीलः ।
दिव्यः मणीनां प्रवरो मणिः भुजंगौघ-विद्रावणः ॥२४२॥

अर्थ :- मारती चूड़ानी मध्यमा देदीप्यमान किरणोवालो दिव्य-मणीओमां श्रेष्ठ. सर्पोणा समूहने विद्रवित करतो मणी छे.

हिन्दी अनुवाद :- मेरी चूड़ा के मध्य में दिव्य-मणियों में श्रेष्ठ, देदीप्यमान किरणवाला सर्प के समूह को दूर करनेवाला मणि है।

गाथा :-

जस्स पभावेण इमे डसिउमणावि हु चयंति नो डसिउं ।
घोर - विसावि हु सप्पा सप्पंति न बद्ध-वयणव्व ॥२४३॥

छाया :-

यस्य प्रभावेण इमे डंसितुंमनापि खलु शक्नुवन्ति न दष्टुं ।
घोर - विषाऽपि खलु सर्पा सर्पन्ति न बद्ध - वदन इव ॥२४३॥

अर्थ :- जेना प्रभावधी आ डंसवाना स्वभाववाला दंशवामाटे समर्थ बनता नथी, बांधेला मुखनी जेम घोर विषवाला पण सर्पो दंश मारता नथी.

हिन्दी अनुवाद :- जिनके प्रभाव से यह डंकीले स्वभाव वाले, अति भयंकर विषवाले भी ये सर्प बंधे हुए मुख की तरह दंश देने में समर्थ नहीं हैं।

गाथा :-

तं घेत्तूणं वर - मणिं सिंचसु सलिलेण तेण तो पच्छा ।
अच्छोडेसु भुयंगे अंग - विलगगे महमणेगे ॥२४४॥

छाया :-

तां गृहीत्वा वर-मणिं सिञ्च्यस्व सलिलेन तेन ततः पश्चात् ।

आच्छोटय भुजंगान् अंग - विलग्नान् महंतमनेकान् ॥२४४॥

अर्थ :- आ श्रेष्ठमणिने ग्रहण करीने तेने पाणीवडे सिञ्च, त्यावर पछी अंगपर लागेला, मोटा अनेक सर्पोनी पर छंटाकाव कर.

हिन्दी अनुवाद :- इसीलिए इस श्रेष्ठमणि को लेकर उस पर पानी द्वारा सिञ्चन कर, तत्पश्चात् अंग पर लगे हुए बड़े सर्पों पर उस पानी का छिड़काव कर।"

गाहा :-

आमन्ति भणंतेणं तच्चयणं सायरं कयं सव्वं ।

अच्छोडिया जलेण मत्ति विलीणा अह भुयंगा ॥२४५॥

छाया :-

आमिति भणमाणेन तद्वचनं सादरं कृतं सर्वम् ।

आच्छोटिता जलेन मटिति विलीना अथ भुजङ्गाः ॥२४५॥

अर्थ :- 'हा' ए प्रमाणे कहेता मारा वडे तेनु वचन सर्व पण आदर सहित करावु. हवे पाणीवडे छंटायेल ते सर्पो जल्दीथी दूर चाली गया.

हिन्दी अनुवाद :- 'हाँ' इस प्रकार कहते हुए मेरे द्वारा उनके वचन का पालन किया गया और जल से सिञ्चित वे सर्प भी शीघ्र दूर चले गये।

गाहा :- अविय !

मणि - सलिलेणं सिक्ता खणेण सव्वेवि पाविया विलयं ।

खर - जालावलि - जलणोवताविया मयण - पिंडव्व ॥२४६॥

छाया :- अपि च

मणि-सलिलेन सिक्ता क्षणेन सर्वेऽपि प्राप्ता विलयम् ।

खर - ज्वालावलि - ज्वलनोपतापिता मदन-पिण्ड इव ॥२४६॥

अर्थ :- मणिना पाणिवडे सिञ्च्यायेल क्षणवारमां सर्वे पण सर्पो भयंकर-भडभडता आगथी तपावेला मीणनी जेम विलीन थई गया.

हिन्दी अनुवाद :- ज्वालामुखी की आग से तप्त मोम की तरह मणि के जल से सिञ्चित वे सभी सर्प भी उसी क्षण विलीन हो गये।

गाहा :-

अह सो पणट्टु-वियणो सीयल - तरु - छाहियाए उवविट्ठो ।

मह-पुरिस-कय - सुकोमल - किसलय - संछण्ण - संथरए ॥२४७॥

छाया :-

अथ स प्रणष्ट - वेदनाः शीतल - तरु छायायां उपविष्टः ।

मम-पुरुष-कृत - सुकोमल - किशलय - संछन्न - संस्तारके ॥२४७॥

अर्थ :- हवे चाली गयेली वेदनावालो शीतल वृक्षनी छायायां मारा वडे करायेल सुकोमल कुंपलोथी आच्छादित गादीमां ते पुरुष बेठो.

हिन्दी अनुवाद :- अतः निर्गत वेदनावाला वह पुरुष शीतल वृक्ष की छाँव में मेरे द्वारा बनाई हुई सुकोमल किसलय की गादी में बैठा।

गाहा :-

आभट्टो पढमं च तेण अहयं कत्तो तुमं आगतो,
किं वा नाम कहिं कुलम्मि विमले जाओ सि, को ते पिया ?
एवं भो घणदेव ! तेण तइया पुट्टे मए साहिया,
पुव्वुत्ता सयलावि तुज्झ कहिया जा सा पउत्ती तहिं ॥२४८॥

छाया :-

आभाषितः प्रथमं च तेन अहकं कुतस्त्वं आगतो,
किं वा नाम कस्मिन् कुले विमले जातोऽसि कस्ते पिता ।
एवं भो धनदेव ! तेन तदा पृष्टे मया कथिता,
पूर्वोक्ता सकलापि तव कथिता यासा प्रवृत्तिस्तदा ॥२४८॥

अर्थ :- तेना वड़े पहेला हुं पूछायो - “तुं क्यांथी आवेलो छे ? तारु नाम शुं छे ? कया निर्मल कुलमां तारो जन्म थयो छे ? तारा पिता कोण छे ? तयारे तेनावड़े पूछाये छते हे धनदेव ! जे वृत्तान्त तने कहेवायो ते पूर्वकहेलो संपूर्ण वृत्तांत आ प्रमाणे मारा वड़े कहेवायो.”

हिन्दी अनुवाद :- उनके द्वारा पहले मैं पूछा गया - “तुं कहाँ से आया है ? तेरा नाम क्या है ? कौन से निर्मल कुल में तेरा जन्म हुआ है ? तेरे पिता कौन हैं ? इस प्रकार उनसे पूछा जाने पर हे धनदेव ! जो प्रवृत्ति मैंने पहले तुझे कही वही संपूर्ण प्रवृत्ति मैंने उसे भी कही ।”

गाहा :-

साहु - धणेशर - विरइय - सुबोह - गाहा - समूह - रम्माए ।
रागागि - दोस - विसहर - पसमण - जल - मंत - भूयाए ॥२४९॥

छाया :-

साधु-धनेश्वर- विरचित - सुबोध - गाथा - समूह - रम्यया।
रागाग्नि - दोष - विषधर - प्रशमन - जल - मन्त्र-भूतया ॥२४९॥

अर्थ :- सुखेथी बोधकरी शाकाय तेवा गाथाना समूहथी रम्य, राग रूपि अग्नि अने द्वेषरूपि विषधरने शान्त करवा माटे जलरूपी मन्त्रसमान, साधु धनेश्वरवड़े रचना करायेल।

हिन्दी अनुवाद :- सुखपूर्वक बोध हो सके ऐसी गाथाओं के समूह से रम्य, राग तुल्य अग्नि और द्वेष तुल्य विषधर को शान्त करने के लिए जलरूप मन्त्र समान...

गाहा :-

एसो एत्थ समप्पइ विज्जाहर - मोयणोत्ति नामेण ।
सुरसुंदरि नामाए - कहाए बीओ परिच्छेओ ॥२५०॥

छाया :-

एषोऽत्र समाप्यते विद्याधर - मोचन इति नाम्ना ।

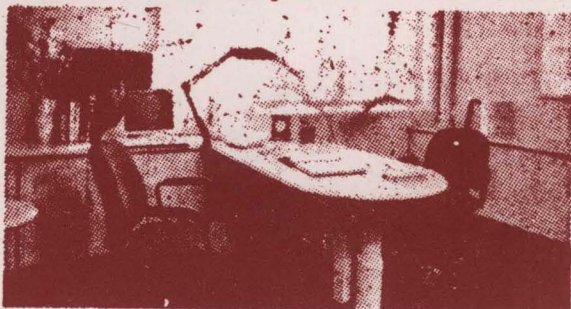
सुरसुन्दरि-नाम्ना कथायाः द्वितीयः परिच्छेदः ॥२५०॥

अर्थ :- अहीं आ “विद्याधरनुं मोचन” ए प्रमाणेना नाम वड़े सुरसुन्दरि नामनी कथानो द्वितीय (बीजो) परिच्छेद मारा वड़े समाप्त कराय छे.

हिन्दी अनुवाद :- यह रचना मुनि धनेश्वर द्वारा की गई है। इधर इस “विद्याधर का मोचन” इस प्रकार के नाम से सुरसुन्दरी नाम की कथा का द्वितीय परिच्छेद मेरे द्वारा समाप्त हुआ।

॥ द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ॥

NO PLY, NO BOARD, NO WOOD.



ONLY NUWUD.[®]

INTERNATIONALLY ACCLAIMED

Nuwud MDF is fast replacing ply, board and wood in offices, homes & industry. As ceilings,

DESIGN FLEXIBILITY

flooring, furniture, mouldings, panelling, doors, windows... an almost infinite variety of

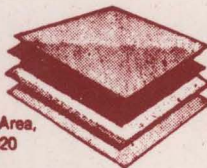
VALUE FOR MONEY

woodwork. So, if you have woodwork in mind, just think NUWUD MDF.

Arma Communications



E-46/12, Okhla Industrial Area,
Phase II, New Delhi-110 020
Phones: 632737, 633234,
6827185, 6849679
Tlx: 031-75102 NUWD IN
Telefax: 91-11-6848748



IS 12408



*The one wood for
all your woodwork*

MARKETING OFFICES: • AHMEDABAD: 440672, 469242 • BANGALORE: 2219219
• BHOPAL: 552760 • BOMBAY: 8734433, 4937522, 4952648 • CALCUTTA: 270549
• CHANDIGARH: 603771, 604463 • DELHI: 632737, 633234, 6827185, 6849679
• HYDERABAD: 226607 • JAIPUR: 312636 • JALANDHAR: 52610, 221087
• KATHMANDU: 225504, 224904 • MADRAS: 8257589, 8275121